तृतीय अध्याय

"हिन्दी उपन्यासों में चित्रित दलित-जीवन"

(सारेजल का गांव, धरती धन न अपना, मोरी की ईंट, एकलव्य, आग-पानी आकाश के संदर्भ में)

तृतीय अध्याय

"हिंदी उपन्यासों में चित्रित दलित-जीवन"

(खारे जल का गांव, धरती धन न अपना, मोरी की ईंट, एकलव्य, आग-पानी आकाश के संदर्भ में)

1. अंध विश्वास।
2. उत्सव-पर्व-तीज-त्यौहार।
3. रूढ़ि-प्रथा और परंपरा।
4. विवाह संस्कार।
5. मृतक संस्कार।
6. देवी-देवता संबंधी मान्यता।
7. बलि प्रथा।
8. आर्थिक स्थिति एवं व्यवसाय।
9. रहन-सहन व निवास व्यवस्था।
10. शिक्षा संबंधी स्थिति।
11. जातीय भेदाभेद।
12. जातीय पंचायत।
13. संगठन एवं समूह भावना।
14. राजनीतिक स्थिति।
15. लोककथा व लोकगीत।
16. लोककथा व लोकगीत आदि के साथ दलित-जीवन का चित्रण।
17. निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

''हिंदी उपन्यासों में चित्रित दलित-जीवन''

(खारे जल का गांव, धरती धन न अपना, मोरी की ईंट, एकलव्य, आग-पानी आकाश के संदर्भ में)

प्रस्तावना :- साहित्य और समाज जीवन का परस्पर संबंध होने के कारण समाज के हरवर्ग का, उनके जीवन का, उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठ भूमिका, उनमें उत्पन्न चेतना का चित्रण साहित्य में हो रहा है। गांधीजी के 'देहात की ओर चलो' इस आवाहन से प्रभावित साहित्यकारों ने अपने साहित्य में ग्रामजीवन का चित्रण करना शुरू किया। इसके साथ-साथ 'प्रगतिशील संघ' की स्थापना के कारण साहित्य में किसान, मजदूर, शोषित, पीड़ित, दलित, वेश्या, विधवा, परित्यक्त्या आदिका चित्रण होने लगा। दलित साहित्य का निर्माण इसी का ही परिणाम है। भारतीय समाजव्यवस्था का शोषित, उपेक्षित अंग दलित समाज है। साहित्यकार युग चेतना के साथ युग का, जनजीवन का चित्रण करता है। सामाजिक उपन्यास सामाजिक समस्या का यथार्थ चित्रण करता है। सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का चित्रण करने वाला साहित्यकार युगधर्मी साहित्यकार होता है। क्योंकि वह अपना धर्म निभाता है। ''युग चेतना साहित्य का धर्म है। युगचेतना का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य युगीन भावनाओं, परिस्थितियों से भिन्न नहीं हो सकता।''[1] इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य सिर्फ काल्पनिक धरातल पर निर्माण नहीं होता बल्कि उसकी नीवं समाज जीवन ही है। हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने युग धर्म को निभाया है। आलोच्य उपन्यासों में दलित जीवन का चित्रण होना इसका ही सबूत है।

दलित जीवन में स्थित अंधविश्वास, रूढ़ि-परंपरा, उत्सव-पर्व, संस्कार, शिक्षा, जातिव्यवस्था, जातीयभेद, समोभावना एवं संगठन, लोकगीत या लोककथा, आदि विविध पहलुओं के साथ दलित जीवन का लेखा-जोखा यहाँ हम आलोच्य उपन्यासों के आधार पर प्रस्तुत करेंगे।

1. अंधविश्वास :-

मनुष्य संस्कृति की सहायता से जीवनयापन करने वाला प्राणी है। भौतिक संस्कृति और अभौतिक संस्कृति का प्रभाव धर्म पर पड़ता है। व्यक्ति के समूचे जीवन पर धर्म का असर रहता है। मनुष्य धर्म को ही जीवन-यापन की पद्धति बनाता है। धर्मसंस्था में विश्वास, श्रद्धा, पूजा-पाठ, प्रार्थना आदि का स्थान है। समाज जीवन में धर्म और अंधविश्वास का संबंध रहा है। धर्म मनुष्य को नैतिक शिक्षा, सदाचार, प्रेम एवं सहानुभूति की शिक्षा देता है। परंतु आज अज्ञान के कारण धर्म का रूप विकृत बना है। जिसके कारण अंधविश्वास निर्माण हो गये।

''अंधविश्वासों का उद्गम मानव मन का एक अभियान है। इसकाकारण है कि आदिमानवीय विकास स्थिति में अंधविश्वास एक ऐसी दशा की ओर संकेत करते हैं। जब मानव नामधारी प्राणी की मानसिक

शक्ति, प्रकृति तथा विश्व के प्रति एक जिज्ञासा, कौतूहल तथा भय की मिली-जुली मनोवृत्ति का परिचय देती है।"[2] यहाँ स्पष्ट है मानव जीवन में अंधविश्वास प्रभावी है। जहाँ अज्ञान, अशिक्षा का बोलबाला रहता है। वहाँ अंधविश्वास निर्माण होते हैं। मानसिक दुर्बलता, अंधविश्वास की जननी है। आलोच्य उपन्यासों में दलित जीवन में स्थित विभिन्न अंधविश्वासों को, उनकी पाप-पुण्य संबंधी धारणाओं, मंत्र-तंत्र, भूत-पिशाच, चुडैल-डायन संबंधी अंधविश्वासों को चित्रित किया है जिस पर हम प्रकाश डालेंगे -

'खारे जल का गांव' (1972) उपन्यास में डॉ.भगवती प्रसाद शुक्ल (1972) ने इस पर सोचा है। इस गांव में 'घी' की मटकी गिरना, शादी के लिए अपशकुन माना जाता है। चसिया के विवाह की तैयारी के दौरान उसकी मौसी के हाथों घी की मटकी गिर गयी और बड़ी गनीमत हो गई। इस पर तिवारी कहता है - "ई शादी न होगी।" यहाँ अंधविश्वास के दर्शन होते हैं। इस उपन्यास में बरसात न होने पर वरूण राजा को प्रसन्न करने के लिए कई प्रचलित अंधविश्वासों का पालन किया जाता है। "मंदिर में भजन कीर्तन करना, शंकर की मूर्ति को पानी में डुबोना, देवी के मंदिर में सहस्र नाम जप करना, देवी के आश्रम में हवन-यज्ञ करना।"[3] ये सब बातें अंधविश्वास के प्रतीक हैं। देवगांव और बेवहारी गांव में अकाल पड़ने के बारे में अंधविश्वास रहा है। बरसात नहीं होने के कारण जब अकाल पड़ता है तब लोग कहते हैं कि "ब्राह्मणों द्वारा हल जुतवाने पर पानी बरसेगा।" इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण द्वारा हल चलाने से पानी बरसेगा और अकाल की समस्या हल होगी। इसके पीछे लोगों का अज्ञान दिखाई करता है। अंधश्रध्दा के कारण ग्रामवासियों ने ब्राह्मणों को इकठ्ठा करके हल जुतवाया।

'धरती धन न अपना' (1981) उपन्यास में जगदीश चंद्र जी ने पंजाब प्रान्त के रल्हन गांव में रहने वाले हरिजनों में स्थित अंधविश्वास पर सोचा है। मनोकामना की पूर्ति करना, दीपक जलाना, बीमारी हटाना, बलि देना आदि संबंधी अंधविश्वास है।

घोडेगांव की चमादड़ी के बाहर 'चो' के पार भुल्लेशाह की टूटी-फूटी मजार है, इस मजार के सामने कोई व्यक्ति सरसों के तेल का दिया जलाता है तो उसकी मनोकामना पूरी होती है ऐसी लोगों की धारणा है। "कभी-कभी दुखी, बीमार, संकटग्रस्त चमारिन कब्र के सामने दिया जलाती थी।"[4] काली की हड्डी टूटने पर उनकी चाची चौधरी को दोष देती है और वीरभान को डेढ़दाना फेंककर चोट जल्दी भर देने की मन्नत मांगती है। जब बरसात नहीं होती तब ख्वाजा पीर को बलि देने की विचारधारा है। बलि के लिए चंदा इकठ्ठा करके बकरा खरीद लिया जाता है और उसकी बलि दी जाती है। इसीलिए बूटासिंह और गांव वालों ने बरसात रूकने के लिए भी बकरे की बलि दी। इसके पीछे उनकी अंधश्रद्धा दिखाई देती है। जलती हुई शव को ठोकर मारने से मृतात्मा को मुक्ति मिलती है तथा चिता पर देशी घी डालने से मृत व्यक्ति को पुण्यात्मा कहा जाता है। आदि

विचारधारा के पीछे कोई वैज्ञानिक कारण दिखाई नहीं देता। अत: इसे अंधश्रद्धा ही कहा जाएगा।

'मोरी की ईंट' में उत्तरांचल में स्थित मेहतर जनजातियों में स्थित अंधविश्वास पर विचार किया है। भविष्य देखना देवी-देवता पर विश्वास रखना आदि संबंधी अंधविश्वास दिखाई देता है। भविष्य के बारे में पूँछते समय ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए, नहीं तो नरक की प्राप्ति होगी। इसके संदर्भ में अग्निहोत्री कहते हैं - "बिना दक्षिणा दिये ब्राह्मण से भविष्य फल पूँछोगे तो ससुरों तुम्हारी सौ-सौ पीढ़ियाँ रौरव और कुम्भीपाक नरकों में पड़ी रहेगी।"[5] देवी-देवताओं की यात्रा करना, वहाँ दक्षिणा बाँटना, फकीर, भिखमंगों, अपाहिजों को दान देना आदि प्रवृत्तियाँ इन लोगों में दिखाई देती है। ऐसा करने से देवी-देवता प्रसन्न होते हैं। ऐसी उनकी धारणा है। सैमुअल की पहली तनख्वाह पर उसकी ताई देवी-देवता के थान पर जाकर दान देना चाहती है। वह कहती है - "मैं तो अपने बेटे की कमाई की खुशी में बड़े-बूढ़ों के देवता के थान पर कल सिन्नी जरूर बाँटूंगी।"[6] इसके पीछे उनकी भावुकता और श्रद्धा दिखाई देती है परंतु अंधश्रद्धा हावी है।

'एकलव्य' में चन्द्रमोहन प्रधान जी ने महाभारत की कथा का आधार लेकर निषाद जाति के संदर्भ में समाज में स्थित अंधश्रद्धा की ओर अंगुली निर्देश किया है। एकलव्य हीन, अछूत, निषाद जाति का होने के कारण उसे शिक्षा व्यवस्था से दूर रखा जाता है। आचार्य द्रोण द्वारा उसे शिष्यत्व न देना, उसे धनुर्विद्या का ज्ञान न देना और यह कहना कि "सम्राटों के लिए आरक्षित ज्ञान को हीन जातियों में वितरित करके वे पाप के भागी नहीं बनना चाहेंगे।"[7] आदि के पीछे समाज व्यवस्था व पाप-पुण्य के प्रति अंधश्रद्धा ही रहा है। ऐसा लगता है।

'आग-पानी आकाश' उपन्यास रामधारी सिंह दिवाकर ने झिटकी बभनगामा और दरभंगा अंचल में रहने वाले हरिजनों में स्थित अंधविश्वासों पर सोचा है। हरिजनों के स्पर्श से वस्तु अपवित्र हो जाती है, परंतु लोहा अछूतों द्वारा स्पर्श करने पर भी वह अपवित्र नहीं होती है। इसीकारण गांव के स्कूल में चांपाकल का नल लोहे का बैठाया जाता है। जो कि हरिजन के बच्चे भागवत और युगेश्वर द्वारा स्पर्श करने तथा पानी पीने से अपवित्र नहीं होता। इस छुआछूत की भावना के पीछे उनका अंधविश्वास ही दिखाई देता है। छात्रावास में भी युगेश्वर को इस समस्या से संघर्ष करना पड़ा। युगेश्वर के बिछौने पर सवर्ण छात्रोंद्वारा बाल्टी से पानी फेंकना, उन्हें अलग रखना, भोजन के लिए दूर बिठाना आदि हरकतों के पीछे अंधश्रद्धा ही अधिक है।

अत: स्पष्ट है दलित जातियों में अंधश्रद्धा की भावना अधिक है। देवी-देवता संबंधी उनकी धारणा अंधविश्वास का प्रतीक है। अज्ञान, अशिक्षा का प्रभाव तथा नये वैज्ञानिक विचारों के अभाव के कारण अंधविश्वास बढ़ रहा हैं। पुत्र-प्राप्ति, मनोकामना पूर्ति, बरसात की प्राप्ति, बीमारी से मुक्ति आदि के संदर्भ में उनमें जो धारणा है वे सभी अंधविश्वास के ही प्रमाण हैं। आलोच्य उपन्यासों के अध्ययन के उपरान्त ऐसा दिखाई देता है कि 'खारे जल का गाँव' (1972) में जितने अंधविश्वास हैं उसकी तुलना में 'आग-पानी

आकाश' (1999) में अंध विश्वास कम दिखाई देते हैं। इसके पीछे दलितों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार और नई चेतना आदि कई कारण दिखाई देते हैं।

3) उत्सव-पर्व, तीज-त्यौहार :-

उत्सव-पर्व, तीज-त्यौहार समाज का एक ऐसा प्रतिमान है जो किसी भी समाज में चिरकाल तक प्रचलित रहने के कारण सामाजिक व्यवहार का सामान्य अंग बन गया है। पर्वों-त्यौहारों का सीधा संबंध रीति-रिवाज से है। भारतीय समाज जीवन में उत्सव-पर्व-तीज-त्यौहार का विशेष महत्व है। हिन्दू संस्कृति एवं समाज व्यवस्था में हर दिन का कुछ न कुछ महत्व रहा है। शहरी समाज की अपेक्षा ग्रामीण समाज में इसका अधिक महत्व है। सभी लोग आनंद एवं उल्लास के साथ उसमें शामिल होते हैं। रामनाथ शर्मा ने "शिक्षा देना, सामाजिक संगठन बनाना, मनोरंजन करना, एकता को दृढ़ करना, दु:ख से छुटकारा पाना, मन:शान्ति देना, समय का सदुपयोग करना आदि प्रयोजन माने हैं।"[8] दलित लोग भी इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उत्सव मनाते हैं। आलोच्य उपन्यासों में इसका चित्रण हुआ है।

'खारे जल का गांव' उपन्यास में डॉ.भगवती प्रसाद शुक्ल जी ने देवगांव और बेवहारी गांव में उत्सव-पर्व-तीज-त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाने की लोगों की जो प्रवृत्ति है उस पर गहराई से प्रकाश डाला है। मेले का आयोजन करना, गीत गाना, नृत्य करना, व्रत रखना, पारायण करना, मिठाई बांटना, पूजा करना, आदि रूप में उत्सव-पर्व मनाते हैं। जातीय एकता, एकात्मता, सामूहिकता आदि उनकी विशेषता है। बेवहारी व देवगांव के लोग दुर्गा देवी, शिव-पार्वती तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा-उपासना करके उनके मेलों-उत्सवों का आयोजन करते हैं। पूजा के अवसर पर गुलाल, बेला, और गेंदा के फूल चढ़ाकार 'दुर्गा सप्त शती' 'शिव महिम्न स्तोत्र' का पारायण भी करते हैं। एकादशी और तेरस को विशेष पूजा की जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि इन लोगों पर धार्मिकता की गहरी छाप है। मंदिर के रास्ते में 'ठेलम ठेल' मची हुई है। छोटे बच्चों का रेला तो झूला झूलने के लिए 'रहट' के पास ही थम जाता है। मेले में मिठाइयों की दुकानें, सरबत और रसों की दुकानें, फूलमालाओं तथा नारियल की दुकाने होती हैं। लोगों का झुंड उन दुकानों से सामानों को खरीदकर मंदिर में पूजा-अर्चा के लिए जाते हैं। शंकर-पार्वती का ब्याह सम्पन्न किया जाता है। जिसमें औरतें गीत और मंगलाचार गाती हैं। विवाह गीत और नृत्यगीत गाकर नाचती हैं। यहाँ के लोग धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण मकर-संक्रांति मेले का आयोजन करते हैं। इस अवसर पर तिल के लड्डू और लाई-फूटा तथा खिचड़ी बांटकर शिव-पार्वती का विवाह रचाते हैं। सालभर में एक बार 'गोदावल मेला' का आयोजन करते हैं। इसमें नाई, चमार, तेली, कुर्मी, खटीक, कोल, गोंड, सुनार आदि जातियों के लोग तथा उनके मुखिया इकठ्ठा होकर इसे मनाते हैं। सोन नदी के घाट पर एक पत्थर की गाय है। वहाँ पर प्रतिवर्ष मेले का आयोजन किया जाता है।

जातीय एकता और सामूहिकता का आदर्श उदाहरण 'गोदावल मेला' है। सभी जाति-धर्म, पंथ, सम्प्रदाय के लोग इसमें शरीक होते हैं। ऐसे पर्व मनाने से साम्प्रदायिकता की समस्या नहीं रहेगी, ऐसा मुझे लगता है। होली का त्यौहार भी इसीप्रकार से मनाया जाता है।

'धरती धन न अपना' में जगदीश चंद्र ने धर्म परिवर्तन पर अधिक बल दिया है। हरिजन लोग धर्म परिवर्तन करके ईसाई बन जाते हैं। धर्म परिवर्तन के दिन को उत्सव का रूप देकर गीत गाते हैं, बाजा बजाते, मिठाई और गोली बांटते हुए अपना उत्सव मनाते है। इसके पीछे उनकी खुशी की भावना दिखाई देती है। भारतीय परंपरा के अनुसार वे उत्सव-पर्व मनाते हैं। उपन्यासकार ने अन्य उत्सव-पर्वों का अधिक चित्रण नहीं किया है। लगता है कि उपन्यासकार का लक्ष्य सिर्फ ईसाई लोगों के धर्म परिवर्तन की प्रवृत्ति स्पष्ट करना यही है।

'मोरी कीईंट' में मदन दीक्षित ने मेहतर समाज में बेटे का जन्म-उत्सव धूम-धाम से मनाने की प्रवृत्ति चित्रित की है। बेटी का जन्म अशुभ मानना, और बेटे का जन्म शुभ मानकर धूम-धाम से मनाने की अनोखी मनोवृत्तियाँ यहाँ चित्रित की है। पुत्र जन्म उत्सव के रूप में यहाँ मनाया जाता है। ऐसे अवसर पर बिरादरी वालों को दावत दी जाती है। शादी के अवसर पर भी बकरा कटवाकर पूरी बिरादरी को न्यौता दिया जाता है। मृतक संस्कार में भी सभी बिरादरी वाले शरीक होते हैं। यहाँ स्पष्ट है सुख और दु:ख के अवसर पर सभी लोग इकठ्ठा हो जाते हैं, उनकी सामूहिकता और सहयोगी वृत्ति यहाँ दिखाई देती है।

यहाँ स्पष्ट है आलोच्य उपन्यासों में धूम-धाम से उत्सव मनाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उत्सव-पर्व मनाते समय जातीय भेदाभेद की भावना दिखाई नहीं देती। 'खारे जल का गाँव' में जितने विस्तृतता के साथ उत्सव पर्वों का चित्रण किया है, उतना विस्तृत चित्रण नववें और दसवें दशक के उपन्यासों में दिखाई नहीं देता। बल्कि धर्म परिवर्तन की समस्यापर दिवाकर, जगदीशचंद्र आदि उपन्यासकारों ने बल दिया है। इसी कारण उत्सव-पर्व का वर्णन दिखाई नहीं देता, ऐसा लगता है।

3) रूढ़ि-प्रथा और परम्परा :-

भारतीय समाज रूढ़ि परम्परा से आबद्ध है। मानव के प्रत्येक क्रिया कर्म के साथ रूढ़ि, श्रद्धा, अंधश्रद्धा का सम्बन्ध रहा है। अनेक रूढ़ियों का पालन अंधविश्वास और सामाजिक दबाव के कारण किया जाता है। अत: रूढ़ियों के प्रति अनास्था, अविश्वास प्रकट करना, धार्मिक विश्वासों को धक्का पहुँचाना है। हर एक समाज का अपना जीवन विषयक दृष्टिकोण है। जिसका संबंध रूढ़ि-परंपरा से रहा है। कई रूढ़ि-परंपरा शोषण का प्रतीक लगती है। फिर भी उसका पालन किया जाता है। ''प्रथा एवं परंपराएं समूहद्वारा स्वीकृत नियंत्रण की वे पद्धतियाँ हैं, जो व्यवस्थित हो जाती हैं, जिन्हें बिना सोचे-विचारे मान्यता दे दी जाती है और जो एक पीढ़ी

से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।''[9] यह कथन दलित समाज में स्थित रूढ़ि परंपरा पर लागू होता है। दलित समाज में स्थित रूढ़ि-परंपराओं का चित्रण साहित्य में हुआ है। आलोच्य उपन्यासों के आधार पर हम विचार करेंगे -

'खारे जल का गांव' उपन्यास में विंध्याचल अंचल मेंबसे बेवहारी और देवगांव के लोगों में उनकी अपनी परंपराओं, रूढ़ियों, रस्मरिवाजों, एवं रस्मों के प्रति प्रेम लक्षित होता है। अब भी इस अंचल में 'अंजुरी प्रथा' प्रचलित है। शादी-ब्याह में अजुरी भरने का काम लड़की का भाई करता है इसी से ब्याह में पूर्णत्व आता है। चसिया की शादी के अवसर पर अरविन्द अंजुरी भरता है। नई दुल्हन का अन्नदाताओं, पंचों, बड़े मालिकों से परिचय करा दिया जाता है। इस अवसर पर दुल्हन उन्हें प्रणाम करती है। इसी प्रथा को ''मिलौनी रस्म'' कहते हैं। इसी समय जमींदार दुल्हन के अंचल में अनाज छोड़ देते हैं। चनकी का गौना जाने के बाद उसके ससुराल आखेटपुर में इसी प्रकार की प्रथाओं का अवलम्ब किया जाता है। विंध्याचल के इन गांवों में 'दहेज' की प्रथा भी है। इस पर प्रकाश डालते हुए अरविन्द कहता है 'हम लोगों ने शादी में तीन हजार दहेज देने को कहा है।'

'धरती धन न अपना' उपन्यास में पंजाब प्रान्त के रल्हन गांव में स्थित शुभ समाचार के लिए शक्कर बांटना, पंचायत का आयोजन करना, ख्वाजापीर को बकरे की बलि देना, जमींदरों द्वारा चमारों से बेगार लेना आदि प्रथाओं एवं परंपराओं का चित्रण किया है। काली कानपुर से छह साल के बाद अपने गांव वापस आता है, उसकी बूढी चाची प्रतापी एक सुखद घटना की गांव वालों को जानकारी देने के लिए शक्कर बांटती है। साथ-ही साथ परंपरा का निर्वाह करना चाहती है। किसी घटना पर निर्णय देने के लिए जात-पंचायत बुलाना इनकी परंपरा है। परंतु निक्कू जैसा पात्र इस पंचायत के निर्णय का विरोध करता है वह कहता है ''मैं किसी पंचायत को नहीं मानता, एक तो मेरी जमीन खा रहा है और ऊपर से घौंस दे रहा है।''[10] यह उनका कथन चेतना का प्रतीक लगता है। एक-दूसरे से मिलते समय हाथ-मिलाना, हाथ जोड़कर नमस्ते कहने की प्रथा है। जब काली डॉक्टर बिशनदास और पादरी अचिन्त्यराम से मिलता है तब इस प्रथा का पालन करता है। यह प्रथा परिवर्तित समाज व्यवस्था को दर्शाती है। बरसात के लिए ख्वाजा पीर को बकरे की बलि देना एक प्रथा है। डॉ. बिशनदास बलि के विरोधी हैं। वे उसका डटकर विरोध भी करते हैं। तो दूसरी ओर जमींदार, चौधरी, महाजन आदि लोग गरीब चमारों से मुफ्त में काम करवाते हैं। मजदूरी नहीं देते। यह बेगारी की प्रथा यहाँ दिखाई देती है। परंतु उसके खिलाफ काली, संतू, बन्तू, फत्तू आदि लोग इस प्रथा का विरोध करके चमारों का संगठन बनाकर संघर्ष करते हैं। यहाँ स्पष्ट है इस गांव में कई परंपराएं हैं और उसका पालन लोग कर रहे हैं तथा काली जैसे प्रगतिवादी पात्र विघातक, अमानवीय, हिंसक प्रथाओं का विरोध भी कर रहे हैं। जिसके कारण सामाजिक जीवन में परिवर्तन होने की संभावनाएं हैं।

'मोरी की ईंट' उपन्यास में मदन दीक्षित उत्तरेंचल में स्थित मेहतर जातियों की रूढ़ि, परंपराओं पर गहराई से प्रकाश डाला है। रखैल प्रथा, पंचायत व्यवस्था, ब्राह्मण को दक्षिणा देना, मेहतर बनाने के लिए रोटिया बांटना, जूठन खिलाना, अफसर की कोठियों पर काम करने के लिए मेहतरानी रखना, कराव प्रथा आदि प्रथाओं का चित्रण किया है। सरकारी हेल्थ आफीसर की कोठी पर जवान मंगिया की नियुक्ति की जाती है। डॉ. सुरेन्द्र नारायण पांडे और मंगिया के अवैध संबंध से सोहन पैदा होता है। रखैल रखने की प्रथा इस समाज में दिखाई देती है। अवैध संबंध से उत्पन्न संतान को पितृत्व प्रदान करने की भी प्रथा यहाँ दिखाई देती है। पारिवारिक समस्या सुलझाने के लिए पंचायत बुलाई जाती है। झरगदिया और मंगिया के बीच तनाव कम करने के लिए पंचायत कराई जाती है तो अग्निहोत्री ने भविष्य देखने के लिए ब्राह्मण को दक्षिणा देने की बात उठाई है। ''शंभू ठाकुर को मेहतर बिरादरी में शामिल कराने के लिए उसे मेहतरों का बचा हुआ जूठन खिलाया जाता है।''[11] यह जूठन खिलाने की एक अनोखी रस्म रही है। मेहतर जाति में पुनर्विवाह का भी रूप दिखाई देता है। इसे 'कराव' कहा जाता है। इस प्रथा में विवाह जैसा धूम-धड़ाका नहीं होता बल्कि मर्द औरत को चूड़ी-बिछुए पहना देता है। और विवाह की रस्म पूरी हो जाती है। रम्पिया का विवाह इसी प्रकार होता है। 'कराव' यह अनोखी प्रथा यहाँ दिखाई देती है। एक बार किसी मजबूरी से विवाह बंधन टूट जाने पर दूसरी जगह नये विवाह संबंध स्थापित करने की प्रथा को ही कराव कहा जाता है। नारी की दृष्टि से यह प्रथा महत्वपूर्ण लगती है। मदन दीक्षित ने मेहतर समाज में स्थित प्रथा-परंपराओं का सीमित चित्रण किया है। परंतु 'कराव' यह प्रथा अनोखी रही है ऐसा लगता है।

'एकलव्य' उपन्यास में चंद्रमोहन प्रधान ने महाभारत की कथा का आधार लेकर सवर्णों के लिए शिक्षा व्यवस्था का होना, इस प्रथा पर प्रकाश डाला है। निषाद एकलव्य को जातिव्यवस्था के कारण शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है। गुरूदक्षिणा इस प्रथा का शिकार होता है। गुरूदक्षिणा प्रथा के कारण गुरू द्रोणाचार्य एकलव्य से दाहिने हाथ के अंगुष्ठ की मांग करते हैं, एकलव्य प्रथा के अनुसार अंगूठे का दान करता है, यहाँ यह प्रथा शोषण और जातीय भेदाभेद का आयाम लगती है। आज भी शिक्षा व्यवस्था में ऐसी घिनौनी प्रथा दिखाई देती है। प्रधानजी ने प्राचीन कथा का आधार लेकर आधुनिक युग की इस समस्या पर व्यंग्य किया है। उपन्यासकार ने तत्कालीन गुरूकुल परंपरा और शिक्षा व्यवस्था का भी चित्रण किया है।

'आग-पानी आकाश' उपन्यास में रामधारी सिंह दिवाकर जी ने झिटकी-बभनगामा में स्थित रखैल प्रथा, बच्चों का नामकरण, शादी के बाद गौना, पति के द्वारा तलाक दिये जाने पर अथ वा पति की मृत्यु के बाद 'चुभौनी' प्रथा का पालन किया जाता है। इस पर प्रकाश डाला है। ''भूपति बाबू ने बब्बन की अलहद खूबसूरत छोटी बहिन झुनकी को रखैल के रूप में निजी सम्पत्ति के तौर पर रख लिया। रखैल को अलग से छोटा

सा पक्का मकान और गुजर बसर के लिए दस एकड़ जमीन दे दी।"[12] युगेश्वर की शादी उसकी बीमार माँ की इच्छा खातिर की जाती है परंतु गौना लाने से पहले ही माँ की मृत्यु हो जाती है। बाद में उस लड़की का गौना नहीं लाया जाता। श्वसुरद्ववारा युगेशवर भागवत और मंत्री मामा के अनुरोध करने पर भी जब नहीं लाते तब लड़की का दूसरे स्थान पर 'चुभौनी' कर दिया जाता है।

यहाँ स्पष्ट है दलित समाज में स्थित बलि प्रथा, मिलौनी रस्म, अंजुरी भरने की रस्म, करवा प्रथा, रखैल प्रथा, बेगार प्रथा, चुभौनी प्रथा तथा विवाह और मृतक संस्कार के अवसर पर निभाई जाने वाली रूढ़ि-परंपरा, जाति-पंचायत व्यवस्था आदि का चित्रण हुआ है। बलिप्रथा, बेगार प्रथा और मिलौनी प्रथा शोषण का आयाम है। जिसका विरोध सुग्रीव, डॉ.बिशनदास, अरविन्द और काली जैसे प्रगतिवादी पात्र करते हैं। तो नारी के लिए पुनर्विवाह का अवसर देने वाली 'कराव' तथा जूठन खिलाने वाली प्रथा अनोखी लगती है। यहाँ स्पष्ट है आलोच्य उपन्यासकारों ने दलित समाज में स्थित अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की प्रथाओं का चित्रण किया है।

4) विवाह संस्कार :-

मानव एक सामाजिक प्राणी होने के कारण रोटी, कपड़ा, मकान, कामवासना, प्रेम तथा रक्षा आदि उनकी आवश्यकताएं होती है। इनकी पूर्ति वह समाज से करता है। मानव समाज ने यौन संबंध स्थापित करने के लिए विवाह संस्था का निर्माण किया। इसके मूल में नैतिकता और प्रेम रहा है । 'हिन्दी शब्द सागर' में "स्त्री-पुरूष को दाम्पत्यसूत्र में बांधनेवाली रीति को विवाह कहा है।"[13] तो यज्ञ दत्त शर्मा ने "विवाह एक सामाजिक बंधन है, जो मानव जीवन को व्यवस्थित और सुचारू रूप से चलाने के लिए समाज ने बनाया है।"[14] ऐसा कहा है।

हिन्दू समाज में विवाह को संस्कार मानकर उसक तोड़ना अनैतिक और बुरा माना जाता है। इसे एक पवित्र संस्कार कहा है। आलोच्य उपन्यासों में भी इस संस्कार पर विचार किया है। इस संस्कार में अनेक रूढ़ि, परंपराओं का पालन किया जाता है। उस पर हम विचार करेंगे -

'खारे जल का गांव' उपन्यास में विंध्याचल में स्थित विवाह संस्कार पर विचार किया है। विवाह के अवसर पर लोग कई रूढ़ि परंपराओं का पालन करते हैं। अंजुरी भरना, मिलौनी रस्म अदा करना, दहेज देना आदि प्रथाओं का पालन चसिया और चनकी के विवाह के अवसर पर किया जाता है। विवाह में अंजुरी भरने का काम दुल्हन का भाई करता है। इसीसे विवाह में पूर्णत्व आता है ऐसी मान्यता है। विवाह के बाद दुल्हन का अन्नदाताओं, पंचों, जमींदारों और बड़े मालिकों से परिचय कराया जाता है। इस अवसर पर दुल्हन उन्हें प्रणाम करती है। इसी समय जमींदार दुल्हन के अंचल में अनाज छोड़ देते हैं। इसी प्रथा को 'मिलौनी' रस्म कहते है।

विंध्याचल में विवाह के अवसरपर दहेज लेने की प्रथा है। अरविन्द कहता हैं हम लोगों ने शादी में तीन हजार दहेज देने को कहा है। यह कथन दहेज प्रथा पर प्रकाश डालता हैं।

'मोरी की ईंट' में मदन दीक्षित ने मेहतर समाज में स्थित अनोखे विवाह संस्कार पर प्रकाश डाला है। ठाकुर शंभूसिंह मेहतरानी परबतिया के साथ विवाह करना चाहता है। मेहतर बिरादरी की प्रथा के अनुसार शंभूसिंह को जूठा भोजन खिलाया जाता है। उसके पश्चात उन्हें बिरादरी में शामिल किया जाता है। गुल्लू पधान की ओर से बिरादरी को रोटी देकर परबतिया के साथ शंभू की शादी कर दी जाती है। ''शंभू को पलंग के नीचे बिठाना, नहाना, कफन से बनाये गये कपड़े पहनाना, बिरादरी को भोजन देना, जूठन खाना आदि से विवाह संस्कार पूरा होता है। उसके पश्चात सुअर मारा गया, लाल गुरू के सामने आग जलाकर शंभू के साथ परबतिया ने सात फेरे डाले। तभी वे पति-पत्नी हो गये।''[15]

उपन्यासकार ने मेहतन बिरादरी में स्थित 'कराव' विवाह का भी चित्रण किया है। यदि पहला विवाह बंधन टूटा हो तब 'कराव' विवाह के द्वारा नया विवाह संबंध स्थापित किया जाता है। इस विवाह में औरत अपनी हैसियत से सिंगार (श्रृंगार) करके बैठती है, बस्ती वाले और बिरादरीवालों की मौजूदगी में नया मर्द उसे चूड़ी-बिछुआ पहना देता है। मुहल्ले-पड़ोस में 'पूये' बांटे जाते हैं। और कराव विवाह की रस्म पूरी होती है। रम्पिया का विवाह इसी प्रकार होता है।

'आग-पानी आकाश' में दिवाकर जी ने परिवर्तित दलित समाज का चित्रण करते हुए उनके परिवर्तित विवाह संस्कार पर प्रकाश डाला है। रामेश्वरी-प्रिया उर्फ बंटीने रामजीत मंडल के साथ कोर्ट मैरिज किया। पारिजात और सी.पी.शर्मा की शादी इसी प्रकार होती है। अब दलित युवक सवर्णों की लड़की के साथ विवाह करना चाहते हैं। इस पर भी उपन्यासकार ने युगेश्वर के माध्यम से प्रकाश डाला है। युगेश्वर कामना घोष के साथ विजातीय विवाह करता है। दिग्विजय बाबू ने दर-बारह हजार रूपये लड़की के रिश्तेदारों को देकर अपना विवाह किया। यहाँ स्पष्ट हैं। विवाह जैसे पवित्र संस्कार में खरीद-फरोख्त हो रही है। इस पर उपन्यासकार ने सोचा है।

यहाँ स्पष्ट है 'खारे जल का गांव' में जिस प्रकार से रूढ़ि-प्रथा-परंपरा का पालन करते हुए विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ है। परंतु 'आग-पानी आकाश' में परंपरा की अपेक्षा कोर्ट मैरिज का ही अधिक प्रभाव दिखाई देता है। परिवर्तित समाज व्यवस्था का यही प्रमाण है। दलित समाज में होनेवाला सामाजिक परिवर्तन यहाँ दिखाई देता है।

5) मृतक संस्कार :-

संस्कृति में कला, तत्वज्ञान, संस्कार आदि के दर्शन होते हैं। रूढ़ि-प्रथा का पालन करने वाला मानव विवाह संस्कार के साथ-साथ मृतक संस्कार को भी महत्व देता है। जिसमें अपनी रूढ़ि-परंपरा का वह पालन करता है। भारतीय समाज व्यवस्था में मृतक संस्कार के अनेक रूप दिखाई देते हैं। आलोच्य उपन्यासों में दलित समाज में स्थित मृतक संस्कार पर प्रकाश डाला है जो इस प्रकार -

'खारे जल का गांव' उपन्यास में डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल ने मृतक संस्कार का भी वर्णन किया है। जो इस प्रकार - लाश के सामने राम भजन करना, बांस की तिकड़ी बनाना, कफन में लाश ढांकना, चार व्यक्तियों द्वारा लाश को उठाना, मिट्टी का घड़ा और जलती हुई फूस लेकर पंडितजी का आगे बढ़ना, गांव के हर घर के लोगों का एक-एक लकड़ी लेकर चुपचाप लाश के साथ चलना, चंदन का टीका लगाकर अग्नि संस्कार करना आदि बाते मृतक संस्कार के समय की जाती है। लाश के पीछे चलते हुऐ लोग निम्न भजन गाते हैं -

> "राम कहत चल, राम कहत चल, राम कहत चल भाई रे ।
> नहिं तो भव बेगार मा परिहे, छूटत अति कठिनाई रे
> .... राम बोलो .... राम ....।"[16]

बाबा देवसेवक राम का मृतक संस्कार इसी प्रकार होता है।

'धरती धन न अपना' में काली की चाची प्रतापी के मृतक संस्कार का वर्णन किया है। चमादड़ी के आचार्य रूदलू राम के आने पर सभी स्त्रियों द्वारा चाची के मृतक शरीर को स्नान कराना, मर्दों द्वारा अर्थी बनाना, लाश को कपड़े पहनाना और अर्थी पर रखना, श्मशान के नजदीक अंतिम दर्शन के लिए रखना, श्मशान भूमि में रूदलू राम द्वारा मंत्रों का पठन करना, बाद में धमारक तोड़ने को कहना, शव अर्थी सहित चिता पर रखना, और लाश को आग लगाना, इसी रूप में मृतक संस्कार किया जाता है। यहाँ मृतक संस्कार में सभी कर्मकांड के साथ किये जाते हैं। ताकि किसी त्रुटि के कारण मृतात्मा को कष्ट न पहुँचे। काली ने अपनी चाची का अंतिम संस्कार श्रद्धा के साथ पूरा किया।

'मोरी की ईंट' में मदन दीक्षित ने मेहतर समाज में स्थित मृतक संस्कार का चित्रण किया है। झरगदियाकी लाश को उठाना, मंगिया द्वारा अपनी चूड़िया तोड़ना, तीसरे दिन सिर धोना, बेटे सोहन के सिर के बाल उतारना, कुनबे वालों को रोटी देकर झरगदियाकी मौत के सूतकों से छुट्टी पाना आदि रूप में यह संस्कार किया जाता है। यहाँ मृतक संस्कार परंपरागत रहा है।

'आग-पानी आकाश' में भी दिवाकर जी ने 'मृतक संस्कार' का वर्णन किया है। भागवत बाबू अपने पिता बब्बन की मृत्यु के बाद बिरादरी वाले तथा अन्य टोली के लोगों को महाभोज देताहै। तो विधवा ब्राह्मणी की मृत्यू के बाद उसपर अग्निसंस्कार किया जाता है। यहाँ भूत-प्रेत-चुडैल-डायन संबंधी अलग-अलग मान्यताएं रही हैं। जिस पर उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला है।

यहाँ स्पष्ट है मृतक संस्कार को एक संस्कार के रूप में चित्रित किया है। अग्नि संस्कार हो अथवा दफन संस्कार, उसमें रूढ़ि-परंपराओं का श्रध्दा के साथ पालन किया जाता है। मृतात्मा को संतुष्ट करना यह विचारधारा उनकी मानसिकता दर्शाती है। साथ-ही-साथ अतृप्त मृतात्मा का चुडैल बनना अंधविश्वास का प्रमाण है।

6) देवी-देवता सम्बंधी मान्यता :-

भारतीय लोग धर्म के साथ-साथ देवी-देवता पर भी विश्वास रखते हैं। धर्म-समाज का नियामक तत्व है तथा उसके बल पर संगठन भी होता है। मानव ने उसके बल पर सृष्टि के रहस्य को समझाने का प्रयास किया है। दलितों में भी अपने देवी-देवता के प्रति निष्ठा एवं आस्था रही है। देवी-देवता की पूजा करना, मंत्र पठन करना, बलि देना, देवता के नाम पर उत्सव पर्व मनाना आदि उनकी देवी-देवता सम्बन्धी मान्यता स्पष्ट होती है। आलोच्य उपन्यासों में इस पर सोचा है जो इस प्रकार है -

'खारे जल का गांव' उपन्यास में बेवहारी देवगांव के लोग दुर्गा देवी, शिव-पार्वती तथा अन्य देवी-देवताओं की पूजा-उपासना करके उनके मेलों-उत्सवों का आयोजन करते हैं। पूजा के अवसर पर गुलाल, अबीर, बेला और गेंदा के फूल चढ़ाकर 'दुर्गा सप्तशती' 'शिवमहिम्न स्त्रोत्र' आदि का पारायण करते हैं। एकदशी और तेरस को विशेष पूजा करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि इन लोगों पर धार्मिकताकी गहरी छाप है। वे लोग देवी-देवता के नाम पर मेले का आयोजन करते हैं, मेले में आस-पास के सभी गांवों के बच्चे-बूढ़े, आदमी-औरत आते हैं। भगवान की पूजा-अर्चा करते हैं। मेले में नारियल, फूल तथा मिठाई इत्यादि की दुकाने भी होती हैं। झूले इत्यादि के 'रहट' भी आते हैं। जिसमें लोग झूला झूलते हैं। मिठाइयाँ खरीदते हैं और आनंद मनाते हैं। गोदावल मेले का वर्णन इसका प्रमाण है।

भारतीय समाज में हिन्दू के देवी-देवताओं के पूजा-अर्चा करने की प्रवृत्ति है। उसके साथ-साथ पीर-फकीर-अवलिया आदि की भी उपासना करने की वृत्ति दिखाई देती है। दलित समाज भी इनके लिए अपवाद नहीं है। जगदीश चंद्र जी ने 'धरती धन न अपना' इस उपन्यास में इसी प्रकार की पूजा चित्रित की है। एक टूटी-फूटी पुरानी कब्र, जिसे परमात्मा माना जाता है, वह एक फकीर की मजार है। कोई दुःखी-बीमार नारी उस कब्र के पास आकर अपनी मिन्नत मांगती है, शाम को सरसों के तेल का दिया जलाती है। इस उपासना

के पीछे उस नारी की श्रद्धा दिखाई देती है। मनोकामना पूरी होने की वह इच्छा करती है। यहाँ स्पष्ट है देवी-देवता के साथ फकीरों की उपासना करने की प्रवृत्ति रही है।

दलित लोग धर्मांतर की समस्या से पीड़ित हैं, ईसाई लोगों द्वारा उन्हें धर्मांतर के लिए प्रेरित किया जा रहा है। परिणामत: ईसाई बने दलित लोग इतवार (रविवार) के दिन चर्च में प्रार्थना के लिए जाते हैं। 'मोरी की ईंट', 'धरती धन न अपना' इन उपन्यासों में इसका चित्रण है। अछूतों के मन्दिर भी अलग रहे हैं। मेहतरों की बस्ती में मंदिरों में कीर्तन-भजन होताहै। 'रघुपति राघव राजाराम' की गूँज सुनाई देती है। इसका चित्रण 'मोरी की ईंट' में हुआ है तो क्रिस्टान बने लोग चर्च में जाकर पूजा अर्चा करते हैं।

आज राजनीतिक नेता लोग राजनीतिक फायदे के लिए जिस प्रकार धर्म का आधार लेते हैं, उसी प्रकार देवताओं के मंदिर भी बनवाते हैं। इस प्रवृत्ति पर दिवाकर जी ने 'आग-पानी आकाश' में व्यंग्य किया है। ठेकेदार भागवत बाबू ने पुल बनाने का ठेका लिया। उस काम से अवैध रूप से सम्पत्ति प्राप्त करके पुण्यकार्य करने हेतु शिव-मंदिर बनाने का संकल्प किया। गांव में घर के आगे शिव-मंदिर बनवाया। मंदिर निर्माण के कार्य के कारण गांव वालों के मन को जीत लिया। शिवरात्रि के अवसर पर आस-पास के गांव के लोग आने लगे। परिणामत: भागवत बाबू राजनीति से जुड़ गये। भ्रष्टाचार को छुपाने का एक साधन मंदिर बन गया। उपन्यासकार ने भ्रष्टाचार के एक नये आयाम पर प्रकाश डाला है।

यहाँ स्पष्ट है आलोच्य उपन्यासों में परंपरागत देवी-देवताओं के चित्रण के साथ-साथ देवी-देवता संबंधी नई मान्यता भी चित्रित की है। 'आग-पानी आकाश' का भागवत बाबू विकृत मनोवृत्ति का प्रतीक हैं, जो देवी-देवताओं के नाम पर अवैध धंधे करता है। देवी-देवता के संबंध में प्रथाओं का पालन करने वाले दलितों का धर्म, देवी-देवताओं के नाम पर भी शोषण हो रहा है, ऐसा दिखाई देता है।

7. बलि प्रथा :-

भारतीय समाज धर्मव्यवस्था के साथ-साथ रूढ़ि-परंपरा में अटका है। धर्म और देवी-देवता से उसका संबंध रहा है। देवी-देवता को प्रसन्न करना, मनौतियाँ मनाना, संकट दूर करने के लिए प्रार्थना करना आदि के कारण कई प्रथाओं का निर्माण हुआ। उन प्रथाओं में बलि प्रथा एक प्रथा है। मुर्गा, मुर्गी, बकरी की बलि देकर मनोकामना पूर्ति की आशा की जाती है। यह प्रथा हिंसक होकर भी उनके लिए आनंद-प्रद लगती है। इसकेपीछेअज्ञान, अशिक्षा, धार्मिकभावना, मानसिक कमजोरी रही है। आलोच्य उपन्यासोंमें इस पर विचार किया है।

भारतीय लोग देवी-देवताओं की उपासना के साथ-साथ तत्संबंधी रूढ़ि-परंपराओं का भी पालन करते हैं। उन रूढ़ि-परंपराओं में बलिप्रथा एक परंपरा रही है। आलोच्य उपन्यासकारों ने दलित समाज में स्थित

बलि प्रथा पर विचार किया है। मनोकामना पूर्ति के लिए, बरसात के लिए, संकट से मुक्ति पाने के लिए, देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलिप्रथा का पालन किया जाता है। मुर्गी-मुर्गा,बकरी, सुअर, भेंड़ आदि की बलि दी जाती है। रल्हन गांव में बलिप्रथा दिखाई देती है जिसका चित्रण जगदीश चंद्र ने अपनी रचना 'धरती धन न अपना' में किया है। जब अधिक वर्षा से बाढ़ आने पर, गांव डूबने की आशंका निर्माण हो गई तब ख्वाजा पीर को बलि देने की योजना लालू पहलवान ने बनायी। बलि के बकरे के लिए चंदा इकठ्ठा किया गया। परंतु बूटा सिंह अपनी एक बकरी देना चाहता है। उनका विचार था बकरी की बलि देने से उन्हें पुण्य प्राप्त होगा। यहाँ पाप-पुण्य के बारे में अनोखी धारणा दिखाई देती है। अंत में चंदा इकठ्ठा करके बकरा खरीदकर उसकी पूजा-अर्चा करके बलि दी जाती है। पूरे गांव को बाढ़ से मुक्ति मिलती हैं। यहाँ डाक्टर बिशनदास बलिप्रथा का विरोध करता है। परंतु आज भी यह प्रथा समाज में दिखाई देती है। अन्य आलोच्य उपन्यासों में इसका चित्रण नहीं है।

8) आर्थिक स्थिति एवं व्यवसाय :-

किसी भी समाज की सम्पन्नता उसकी आर्थिकता पर निर्भर है। दलित समाज की स्थिति इससे अलग नहीं। अज्ञान,अंधविश्वास के साथ-साथ गरीबी, निर्धनता उनके जीवन का एक अंग बनी है। धन के बल पर व्यक्ति विकसित बन सकता है। अर्थात विकास की नींव सम्पत्ति रही है। जिसका अभाव दलित जीवन में है। परंपरागत ढंग से व्यवसाय करने वाले दलित अर्थाभाव में जीवन जी रहे हैं। उनके व्यवसाय अप्रगत हैं। आज सरकार उन्हें विकास योजना से लाभान्वित करने की कोशिस कर रही है। परंतु सफलता अधिक मात्रा में नहीं मिल रही है। आलोच्य उपन्यासों में दलितों की आर्थिक स्थिति पर विचार किया है। जो इस प्रकार -

दलित समाज अज्ञानी और शोषित होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। पारंपरिक व्यवसाय करके जीविका चलाने वाले दलित हैं। मजदूरी करना, मृत जानवरों के खाल उतारना, जूते बनाना, हलवाही करना, जमींदारों की बेगारी करना आदि निम्न स्तर के कार्य करते हैं। आलोच्य उपन्यासों में इसका चित्रण हुआ है।

विंध्याचल में स्थित बेवहारी गांव की आर्थिक स्थिति 'खारे जल का गांव' में चित्रित की है। यह गांव अर्थाभाव के कारण दुर्बल एवं पिछड़ा हुआ है। लोग धन कमाने के विविध आयामों को अपनाते हैं। मजदूरी करना, कर्ज लेना, झूठी गवाही देना आदि सभी कर्म करते हैं। बेवहारी गांव के पश्चिम की तरफ दो सौ कोलो की बस्ती है, जो जमींदारों के हाथ बेंची गई है। उन्होंने जमींदरों के पास गहनें, मकान, खेती-बारी, सबकुछ गिरवी रखे हैं। वे हमेशा कर्ज के बोझ तले दबे रहकर कर्ज अदा करते-करते ही मर जाते हैं। सूद के बदले में उनकी कई पीढ़ियाँ 'हलवाही' करती हैं। लेकिन मरते दम तक या अंत तक वे कर्ज से मुक्त नहीं होते। उनकी

आर्थिक स्थिति इतनी दुर्बल है कि औरतें जब नहाती हैं तो उन्हें नहानेके बाद पहनने के लिए दूसरी साड़ी नहीं मिल पाती। धरमू मिसिर धन प्राप्ति के लिए झूठी गवाही देता है। पुलिस भी उनकी सहायता समय-समय पर लेती है। वह पुलिस वालों की मदत करता है। इससे उसकी आर्थिक दयनीयता स्पष्ट होती है।

जगदीश चंद्र जी ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में रल्हन गांव के दलितों की आर्थिक स्थिति पर सोचा है। वहाँ की चमादड़ी की स्त्रियाँ चौधरियों के घरों और हवेलियों से कूड़ा और गोबर उठाती हैं तो मर्द खेतों में काम करते हैं। इसके साथ-साथ मजदूरी करना, रस्सियाँ बनाना, जूते बनाना, हल चलाना, घास खोदकर बेंचना आदि कई व्यवसाय करके लोग अपनी जीविका चलाते हैं।

मदन दीक्षित ने 'मोरी की ईंट' में मेहतर जन जाति का जीवन चित्रित किया है। मेहतर जन जाति के लोग परंपरागत व्यवसाय करने के साथ-साथ नौकरी भी कर रहे हैं। उसका चित्रण किया है। मेहतर लोग झाड़ू-पल्लों का काम और मजदूरी भी करते हैं। झरगदिया चुंगी का काम करता है तो उसकी पत्नी मंगिया को हेल्थ आफीसर की कोठी पर काम मिलता है । आगे चलकर उसका बेटा सोहन डॉक्टर बन जाता है। इससे स्पष्ट है, आज धीरे-धीरे दलित जन जाति में जीविका के साधन परिवर्तित हो रहे हैं। परिणामत: उनका आर्थिक स्तर उन्नत हो रहा है, परंतु देहात में रहने वाले दलित परंपरागत व्यवसाय कर रहे हैं।

'आग-पानी आकाश' में भी दिवाकर जी ने परिवर्तित दलित जीवन पर विचार किया है। देहात में रहने वाला दलित सुअर पालना, डगरा-सूप, दौरी बनाना, कपड़े धोना, जूते बनाना, पॉलिश करना, मरे हुए पशुओं की खाल उतारना, सुखाना, कूटना,बेंचना, आदि परंपरागत व्यवसाय कर रहे हैं तो दूसरी ओर नगरों में रहने वाले दलित सरकारी विकास नीति से लाभान्वित होकर उच्च शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरी कर रहा है। युगेश्वर वित्तविभाग में अवर सचिव बनता है, अशोक कुमार पुलिस अधिकारी तो उरांवजी ग्राम सेवक बन जाता है। चमार टोली के इस परिवर्तित रूप से यह स्पष्ट होता है, आज आरक्षण नीति के कारण दलितों का जीवन विकसित हो रहा है।

अवैध धंधा करके धन कमाने वाले दलित भी यहाँ दिखाई देते हैं। चोरी करना, झूठी गवाही देना, डाका डालना और डकैतों की सहायता करना आदि अवैध धंधे करके धन कमाने वाले लोगों का चित्रण 'खारे जल का गांव' और 'आग-पानी आकाश' में दिखाई देता है। यहाँ स्पष्ट है 'खारे जल का गांव' में परंपरागत धंधा करने वाला दलित तो 'आग-पानी आकाश' (1999) का दलित पढ़-लिखकर सरकारी नौकरी कर रहा है। यह परिवर्तन यहाँ दिखाई देता है। यहाँ स्पष्ट है नागरी संस्कृति में रहने वाला दलित सवर्णो से स्पर्धा करके अपना जीवन भौतिक सुख-सुविधाओं में सम्पन्न कर रहा है। उनके रहन-सहन, वेशभूषा, आहार-विहार आदि में भी ये परिवर्तन दिखाई देता है।

9) रहन-सहन व निवास व्यवस्था :-

ग्रामीण जीवन में रहने वाला दलित अर्थाभाव से पीड़ित है। देहातों में मिलनेवाली वस्तुओं का वह उपयोग करता है। गन्दी-बस्ती, टूटे-फूटे बर्तन, फटे हुए कपड़े, कींचड़, बदबू, अंधेरा, झुग्गी-झोपड़ी यही उनके जीवन का अंग है। आलोच्य उपन्यासों में दलितों के रहन-सहन चित्रित किये हैं।

'खारे जल का गांव' में बेवहारी और देवगांव के लोग मिट्टी की सहायता से घास-फूस के छोटे-छोटे घर बनाकर उसमें रहते हैं। घरों के ढह जाने पर इमली के पेड़ के नीचे अपने दिन व्यतीत करते हैं। इन घरों की छत नीचे झुकी हुई होती है। यहाँ चमार टोले के लोग मछलियाँ पकड़ना, उन्हें बेंचना, मृतक जानवरों की खाल से जूते बनाना, बेंचना, चोरी करना, डाका डालना, आदि के सहारे उदर पूर्ति करते हैं। शराब पीते है। गेहूँ की लाहिला भूनकर 'होला' बनाकर खाते हैं। लोग सिर पर पगड़ी बाँधते हैं तो औरते लहंगा पहनती है।

आखेटपुर में चनकी की ससुराल की रहन-सहन की स्थिति उसके ही शब्दों में इस प्रकार - ''घर में दो कमरे, एक में खाना बनता था, दूसरे में लोग जमीन पर सोते थे। दीवालें उखड़ी-पुखड़ीथी। खपरैल की छत कई जगह खुली थी, उसी घर में मवेशियों के सड़े हुए चमड़ों का ढेर और एक कोने में भूसा था। महुआ के ठर्रा की दुर्गंध आती थी।''[17] यहाँ स्पष्ट है उनका जीवन अथवा रहन-सहन व निवास स्थान की व्यवस्था निम्न स्तर की है।

जगदीश चंद्र जी ने 'धरती धन न अपना' में चमार जाति के रहन-सहन और निवास व्यवस्था पर विचार किया है। अंधेरी छोटी कोठरी में चमादड़ी के चमार लोग रहते हैं। बरसात में गांव का सारा गंदा पानी बस्ती में फैल जाता है। झोपड़ी के बाहर कीचड़, इर्द-गिर्द बाहर फैला गंदा पानी, कच्चे मकान, टूटे किवाड़ इसी प्रकार उनके निवास की व्यवस्था है। मुहल्ले के बाहर गोबर और कूड़े के ढेर, औरतों के मैले-कुचैले फटे-पुराने कपड़े, नंग-घड़ंग-नाक सुड़सुड़ाते बच्चे, शरीर और कपड़ों से पसीने की आती दुर्गंध आदि रूप में उनके रहन-सहन हैं। तो चौधरी, पादरी तथा पढ़े-लिखे लोगों की रहन-सहन अलग ढंग की है। जिसमें सिर पर पगड़ी, कमीज, लम्बा कोट, हाथ में लाठी आदि है। मदन दीक्षित ने 'मोरी की ईंट' में मेहतर जन जाति का जीवन-चित्रण किया है। मेहतर लोगों की छोटी-छोटी बस्ती होती है। मेहतर लोग नरकीय यातना भुगतते हैं। उनकी वेशभूषा पारंपरिक है। उनके अज्ञान और उनका होने वाला शोषण इसी का ही प्रमाण है। जैकब इसके खिलाफ विद्रोह करता है। अर्थात पढ़ा-लिखा दलित परंपरागत रहन-सहन को छोड़कर नये ढंग से जीवन जी रहा है ऐसा लगता है। इसी प्रकार का चित्रण रामधारी सिंह दिवाकर जी ने 'आग-पानी आकाश' में किया है। लोहिया नगर के धोबियाही मुहल्लें में ताड़ी खाना की दुर्गंध आती है तो भागवत बाबू का सभी भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न भवन भी दिखाई देता है।

चंद्रमोहन प्रधान ने 'एकलव्य' में निषाद, नाग, किरात, पिशाच आदि कई जनजातियों व आदिम वनवासियों के रहन-सहन पर प्रकाश डाला है। ये सभी जनजातियाँ आखेट करना, पशुपालन करना, मत्स्याखेह करना, नौचालन करना, वनौषधि का उपज इकठ्ठा करना तथा बेंचना, दवा-बूटी करना आदि परंपरागत व्यवसाय करते हैं। उनके रहन-सहन अप्रगत है। जंगलों में रहनेवाली अप्रगत-पिछड़ी जनजाति हैं। उपन्यासकार ने उनके रहन-सहन और व्यवसाय को चित्रित किया है।

यहाँ स्पष्ट है आलोच्य उपन्यासों में दलितों के रहन-सहन परंपरागत ही हैं, परंतु पढ़ा-लिखा दलित भौतिक सुख-सुविधा से सम्पन्न जीवन जी रहा है। 'एकलव्य' उपन्यास इन सभी उपन्यासों से अलग है। क्योंकि उसकी कथा महाभारत की कथा है तथा बचे उपन्यासों की कथा आधुनिक भारत की है। देश-काल-वातावरण के अनुसार कथावस्तु में लोगों के रहन-सहन में परिवर्तन दिखाई देता है। उपन्यासकारों ने परंपरागत जनजीवन के साथ-साथ परिवर्तित जीवन को भी चित्रित किया है। यहाँ स्पष्ट है जो दलित शिक्षित बना है, उसके जीवन में परिवर्तन हुआ है। जो अज्ञानी है, उनकी जीविका रहन-सहन वैसे ही परंपरागत ढंग से रही है।

10) शिक्षा सम्बन्धी स्थिति :-

व्यक्ति तथा समाज के विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है। आज के आधुनिक युग में शिक्षा का अनन्य साधारण महत्व है। भारत सरकार ने देश को प्रगतिशील राष्ट्र बनाने हेतु शिक्षा प्रसार पर बल दिया। दलितों में शिक्षा प्रसार के लिए विशेष योजनाएं बनाई। जब तक दलित शिक्षित नहीं होता, तब तक उसका शोषण समाप्त नहीं होगा। नागरी संस्कृति में रहने वाला दलित शिक्षित हो रहा है, परंतु देहातों में रहने वाला दलित आज भी अशिक्षित है। आलोच्य उपन्यासों में इस पर विचार किया है।

आज अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा के कारण हर स्तर का व्यक्ति शिक्षित हो रहा है। आलोच्य उपन्यासकारों ने इसपर सोचा है। विंध्याचल में और वहाँ स्थित दलित जातियों में शिक्षा के प्रति जागृति पैदा हो रही है। लोगों का अज्ञान दूर करने के लिए प्राथमिक शिक्षा से लेकर महाविद्यालयीन शिक्षा-दीक्षा का प्रचार एवं प्रसार हो रहा है। 'खारे जल का गांव' में उपन्यासकार ने इसका चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यास का अरविन्द चमारहटी में जाकर प्रौढ़ शिक्षा का कार्य करता है। वह एक शिक्षित पात्र है। अरविन्द द्वारा चमरहटी में शिक्षा केंद्र खोलना, शिक्षा का प्रसार करना, दलितों में जागृति पैदा करना, उन्हें शिक्षित बनाना आदि घटनाएं चेतना तथा परिवर्तन को स्पष्ट करती है। इसके कारण राजनीतिक परिवर्तन भी हो रहा है।

जाति-पंचायत सामाजिक कार्य के साथ-साथ शैक्षणिक कार्य भी कर रही है। केसरवानी जाति पंचायत द्वारा 'केसरवानी महाविद्यालय' की स्थापना करना इसी बात का प्रमाण है। यहाँ स्पष्ट है कि विंध्याचल में कई सेवाभावी व्यक्ति और संस्था शिक्षा प्रसार का कार्य कर रही है। पहले यहाँ पचास मील की दूरी तक कोई

शिक्षा केंद्र नहीं था। गरीबी के कारण दलित बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते थे। "विंध्याचल अंचल में अस्सी प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं। उनमें चालीस प्रतिशत गोंड आदिवासी हैं।"[18] इससे स्पष्ट है कि आज भी दलितों में अशिक्षा की मात्रा अधिक है।

'धरती धन न अपना' का काली गांव में प्राथमिक शिक्षा प्राप्तकर कानपुर में जाकर नौकरी करके कुछ लिखाई-पढ़ाई कर लेता है। तो 'मोरी की ईंट' में ईसाई लोग सेवा-कर्म के रूप में शिक्षा प्रसार करते हैं। मिशनरी स्कूल खुलवाते हैं। परिणामत: दलितों में शिक्षा प्रसार हो रहा है। इसका चित्रण 'मोरी की ईंट' में हुआ है। ईसापुर में ईसाईयों के मिशन स्कूल में सोहन को प्रवेश मिलता है। वही सोहन आगे चलकर एम.बी.बी.एस. की पढ़ाई पूरी करता है। मेरठ के मेहतर समाज के सैमुअल और खैराती एम.ए. और बी.ए. पास करके अध्यापकीय कार्य करते हैं तो मंगिया, रधिया और रम्पिया रात के स्कूल में पढ़कर थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना जानती है। परिणामत: उनके रहन-सहन में परिवर्तन होता है। मेहतर बस्तियों में आर्य समाजियों द्वारा अछूतोद्धार के साथ-साथ शिक्षा-प्रसार के लिए रात की पाठशालाएं शुरु की।[19] परिणामत: मेहतरों में शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा हो गई।

चंद्रमोहन प्रधानजी ने महाभारत काल में स्थित 'गुरूकुल' शिक्षा पद्धति का चित्रण 'एकलव्य' में किया है। उस काल में हीन जातियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। उस पर भी प्रकाश डाला है। इससे स्पष्ट है जातीय व्यवस्था के कारण दलित अशिक्षित रहे हैं। परंतु एकलव्य जैसा यदि कोई विद्रोही एवं क्रान्तिकारक दलित पैदा होगा तो बिना गुरू की सहायता से भी वह शिक्षित बन सकता है। यही संदेश प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से दिया है। शिक्षित व्यक्ति सम्मान प्राप्त कर सकता है। इस बात को यहाँ स्पष्ट किया है।

'आग-पानी आकाश' के लगभग सभी पात्र शिक्षित हैं। भारत सरकार की उदार शिक्षा नीति और आरक्षण के कारण दलित शिक्षित हो रहा है। इसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है। युगेश्वर यह पात्र अर्थशास्त्र में एम.ए. पास करके भारतीय सेवा की परीक्षा उत्तीर्ण करके अवर सचिव पद पर कार्यरत होता है। भागवत बाबू बी.ए.पास करके ठेकेदारी और राजनीति करते हैं। राम सजीवन भी एम.ए. पास करता है तो करमलाल महतों बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त करता है। भागवत बाबू अपने मृत माता-पिता के नाम महाविद्यालय खोलते हैं। जिसका नाम 'बब्बन-सनीचरी महाविद्यालय' अर्थात बी.एस. डिग्री कॉलेज रखा जाता है। जिसके प्राचार्य प्रो.नीलाम्बर झा होते हैं। उसी महाविद्यालय में भागवत बाबू की पत्नी ग्रंथपाल के पद पर तथा युगेश्वर के पत्नी की बहिन हिन्दी विषय की प्राध्यापिका के पद पर कार्यरत होती है।

यहाँ स्पष्ट है अब दलित जाति में शिक्षा के प्रति जागृति बढ़ रही है। जाति-पंचायत भी शिक्षा-प्रसार में योगदान दे रही है। सामाजिक संस्था, सेवाभावी व्यक्ति और राजनीतिक नेता लोग शिक्षा प्रसार में

अपना-अपना योगदान दे रहे हैं। 1990 के पश्चात के उपन्यासों में शिक्षित दलितों का विस्तृत चित्रण हुआ है। शिक्षा प्रसार में मिशनरी लोगों का कार्य भी महत्वपूर्ण रहा है। अरविन्द, भागवत बाबू जैसे पात्र आदर्श पात्र रहे हैं। जो शिक्षा-प्रसार में योगदान दे रहे हैं।

12) जातीय भेदाभेद :-

भारतीय समाज का आधार जाति संस्था है। अनेक परिवर्तनों के बाबजूद भी जाति संस्था ने अपना अस्तित्व बनाये रखा है। जाति संस्था के समाज, देश, व्यक्ति के जीवन पर लाभदायक या हानिकारक परिणाम हुए हैं। यज्ञ दत्त शर्मा ने जाति संस्था को हानिकारक माना है। यह निश्चित है कि जाति-पांति के कारण मनुष्य-मनुष्य में दरारें पैदा होती हैं। सामूहिकता, अपनापन समाप्त होता है। दलितों के बारे में यही हो रहा है। दलित जीवन में और भारतीय समाज जीवन में स्थित जातीय भेदाभेद पर काफी विचार हुआ है। आलोच्य उपन्यासों में भी इसका चित्रण हुआ है।

'खारे जल का गांव' (1972) उपन्यास में डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल जी ने जातीय भेदभाव और तत्कालीन समाज व्यवस्था में प्रचलित मान्यताओं का चित्रण किया है। 'गोदावल मेले' में भगवान शिव के दर्शन करने आई चमरहटी की औरतों पर पुजारी देवसेवक राम और पंडित गैबीदीन तड़ातड लाठियों की वर्षा करने लगते हैं। मंदिर प्रवेश का विरोध करते हुए कहते हैं -"ई चमारिन मंदिर मा घुसि हैं। ई भोलाबाबा के गीत गावैंगी .... का समझ लिहिन की धरम चला गया ...." इस घटना की रिपोर्ट पुलिस में किये जाने पर पुलिस जमादार सुग्रीव को धमकाते हुए कहता है कि 'क्यों रे खटिक के बच्चे, बलवा करते हो। ऐसा मारूँगा कि सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाएगी।' यहाँ पर सरकारी अधिकारी द्वारा भी जातिभेद के अनुसार बर्ताव करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। अरविन्द द्वारा चमरहटी में प्रौढ़ शिक्षा केंद्र खोले जाने पर उसका विरोध होता है। लोगों में एकता की भावना निर्माण करने हेतु तथा लोगों में जागृति पैदा करने के लिये प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र चलाता है परंतु गांव के बम्हनौटी टोले के लोग पंचायत करके यह फैसला देवसेवक राम को बताते हैं कि - "अरविन्द चमारन के हाथ केर पानी पियत हय। खटिकन के हेन रोटी खात हय, कुर्मी के हेन भात खात हय, ये से जात से बाहर कई दीन गा। अगर देवसेवकराम ओही अलग न करैं तो उनका हुक्का पानी बंद कीन्ह गा।" यहाँ स्पष्ट होता है कि उस गांव में जाति भेदाभेद का पालन कड़ाई से किया जाता है, जिसमें जाति पंचायत की भूमिका सक्रिय नजर आती है। शिक्षा प्रसार जैसे पवित्र कार्य में जाति भेदाभेद के कारण विरोध हो रहा है ऐसा लगता है।

डॉ. भगवती प्रसाद ने इंसानों में इंसानों द्वारा भेदभाव की घटना के साथ-साथ उस गांव की रचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले तालाब, नाले, पेड़ और सड़कों द्वारा भी ऊँच-नीच के भेदभाव को बढ़ावा देने की घटना को भी दर्शाया हैं। ग्राम व्यवस्था और समाज रचना में इन्हीं तत्वों की अहम भूमिका दिखाई देती हैं।

वह यहाँ पर स्पष्ट होता है - ''इंसान के अलावा भी जातीयता का भेदभाव उस गांव के नाले, तालाब, पेड़ तथा गांव के चारों ओर पसरी हुई सड़कें भी करती हैं। सड़क, तालाब तथा नाले के उस पार चमार, डोम, बसुहार, कोल, बारी इत्यादि निम्न जाति के लोग तथा सड़क के भीतरी हिस्से में बाम्हन, बनिया, ठाकुर और कायस्थ रहते हैं।'' इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि गांव की रचना ही पूरे भेदभाव पूर्ण से की गई है जिसमें सजीव तथा निर्जीव सभी तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। जात-पंचायत जातीय भेदाभेद को बढ़ावा देने का कार्य करतो है। उस पर भी उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है, परंतु आज पढ़ा-लिखा युवक अरविन्द, सुग्रीव इसका विरोध करते हैं, यही चेतना का प्रमाण है।

जगदीश चंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में पंजाब प्रान्त के रल्हन गांव में स्थित लोगों में जाति के प्रति भेदभाव पूर्ण व्यवहार को स्पष्ट किया है जिसमें पंडित संतराम हरिजनों को देखकर दूर से ही दुर-दुर करना शुरू करते दिखाई देते हैं। वे हरिजनों को मंदिर और कुएं की जगत के पास फटकने तक नहीं देते। उस गांव के बनिया छज्जूशाह में भी जाति भेदभाव दिखाई देता है। काली को वह सिगरेट पीने के लिए देने पर जब वह हुक्का की मांग करता है तब छज्जूशाह कहता है - ''बात तो तुम्हारी ठीक है। मैंने अपने हुक्के के अलावा दो हुक्के और भी रखे हुए थे। एक जाटों के लिए और दूसरा चमारों के लिये। कुछ दिन हुए एक चमार को पीने के लिए हुक्का मैंने दे दिया और वह भला मानस जाते समे आँख बचा हुक्का लेते गया।''[20] इस प्रकार यहाँ स्पष्ट रूप से जाति के प्रति भेदभाव को उपन्यासकार ने बहुत की कलात्मक ढंग से चित्रित किया हैं।

काली मकान बनाने के उद्देश्य से ईंट के लिए भट्टी पर जाता है, तब भट्टी का मुंशी परजापत दीनू से काली के बारे में कहता है कि 'शक्ल से तो चमार दिखाई देता है परंतु पहनावा कुछ और ही कहता है।' यहाँ पर लोग शक्ल-सूरत और वेशभूषा से भी जाति की परख करते हुए दिखाई देते हैं। काली राजगीर मिस्त्री संतासिंह के पास अपने मकान बनाने के लिये कहने गया तब मिस्त्री काली और निक्कू की बात करता हुआ काली से कहता है कि - ''गांव में कुत्तों और चमारों की पहचान रखना है भी मुश्किल।' इस प्रकार उसके शब्दों में चमारों और कुत्तों में समानता दिखाने की मनोवृत्ति गांव के लोगों में नजर आती है जिसे उपन्यासकार ने मिस्त्री द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। मिस्त्री काली का घर बनाने के लिये तैयार होता है। अपनी मजदूरी के अलावा वह रोटी और चाय के अलग पैसे की मांग करते हुए कहता है कि - ''हम जहाँ राज का काम करते हैं, दोपहर की रोटी और शाम की चाय वहीं खाते पीते हैं। तेरे घर में रोटी तो खा नहीं सकता, इसलिए तुम रोटी चाय के नकद पैसे अलग दे देना। चार आने होंगे।''[21] यहाँ पर नीची जातियों में भी आपस में जाति भेद दिखाई देता है। यहाँ बनियों कारागीरों की नीति स्पष्ट होती हैं।

मिस्त्री संतासिंह काली का मकान बनाते समय उसे जोर की प्यास लगती है तब पानी के बारे में काली नंदसिंह के यहाँ से लाने की बात करते हुए कहता है कि वह तो चमार नहीं तेरा सिख भाई है उसके घरसे मंगवा देता हूँ पी लेना। इस पर मिस्त्री कहता है कि - "वह तो रमदसिया सिख है उसका मेरा क्या रिश्ता है ? सिख बन जाने का यह मतलब तो नहीं कि वह चमार नहीं रहा, धर्म बदलने से जात तो नहीं बदलती।"[22] इस प्रकार यहाँ उपन्यासकार नें स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि धर्म परिवर्तन से जाति व्यवस्था में प्रचलित भेदभाव की समस्या हल नहीं हो सकती है। वह लोगों के मन में गहराई तक अपनी जड़े मजबूत कर चुकी है - जिसे इतनी आसानी से तोड़ा जाना मुश्किल है। वही यहाँ पर मिस्त्री के शब्दों द्वारा बताने का प्रयास किया गया है। धर्म परिवर्तन करने पर नंदसिंह के बारे में पंडित संतराम कहते हैं कि 'पहले उसनं सिख धर्म को स्वीकार किया फिर भी ऊँची जाति के लोगों ने उसे मुँह नहीं लगाया तो ईसाई बन गया, परंतु रहा चमार का चमार। अब तो वह और ही नीचे गिरता जा रहा है। कुछ दिन में तो वह चमारों की बिरादरी से निकलकर चूड़ों-भंगियोंमें जा मिलेगा।' इन बातों को सुनने के पश्चात महाशय तीरथराम ने पंडित संतराम से नंदसिंह के बार-बार धर्म परिवर्तन की क्रिया को रोकने हेतु समझाने की सलाह देने पर पंडित कहते हैं - "राम-राम मैं नंदसिंह के घर जाऊँ ? क्यों मेरा जन्म भ्रष्ट करने की सलाह दे रहे हो ?" इस प्रकार यहाँ नीची जाति के लोगों के घर पर सवर्णों के जाने से उनका जन्म भ्रष्ट हो जाता है ऐसा दिखाई देता है।

काली की चाची बीमार होने पर उसके लिये दूध की आवश्यकता डॉक्टर ने बतायी थी, जिसकी पूर्ति हेतु काली छज्जूशाह के पास जाता है। छज्जूशाह हरीसिंह चौधरी से काली को दूध बेंचने की बात कहता है जिस पर भड़क कर चौधरी कहता है - "शाहा, तेरी अक्ल तो ठिकाने है कि नहीं ? गरीब हूँ तो क्या हुआ ? चौधरी तो हूँ। चमार के हाथ दूध बेचूँगा तो गांव वाले क्या कहेंगे?"[23] इस प्रकार यहाँ पर सवर्ण जाति के लोग अपनी वस्तुएं चमार के हाथों बेंचने में भी हीन भावना महसूस करते हैं। जाति के निर्माण और उसकी मान्यता के बारे में ताये बसन्ता नंदसिंह को फटकारता है कि - "तेरे सिर पर अभी सींग नहीं उगे हैं, तू कुछ भी बन जा लेकिन रहेगा चमार का चमार ही । जात कर्म से नहीं जन्म से बनती है। अगर चमार कहलवाना पसन्द नहीं तो किसी और माँ के पेट से जन्म लिया होता।"[24] यहाँ पर सभी जाति-धर्मों में इस बारे में स्पष्ट मान्यता दिखाई देती है। जाति-व्यवस्था का कड़ाई से पालन करना ही धर्म माना जाता है। यहाँ स्पष्ट है काली द्वारा अपना घर बनाना सवर्णों केलिए अच्छा नहीं लगता, बल्कि वह एक चुनौती बनती है। काली अपना जीवन नये ढंग से जीना चाहता है, यह सामाजिक परिवर्तन का प्रमाण है, परंतु जातीय भेदाभेद के कारण उसमें अड़सरें (रूकावटें) पैदा हो रही हैं। जातीय भेदाभेद भौतिक विकास में रूकावटें डालता है। उसका नष्ट होना ही विकास की सोपान है।

मदन दीक्षित ने 'मोरी की ईंट' उपन्यास में जातीय भेदभाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस उपन्यास में मेहतर समाज की कथा-व्यथा व उनके संघर्ष को प्रमुखता दी गई है। मेहतर समाज की मंगिया को जब हेल्थ आफीसर डॉ. सुरेन्द्र पांडे की कोठी पर नियुक्त किया जाता है। तब डाक्टरनी द्वारा मंगिया की प्रशंसा की जाती है, उसे वह इमानदार और कर्तव्यनिष्ठ समझकर सम्मान करती है। इस पर मंगिया उससे कहती है कि - 'आप एक मेहतरानी को इतना ऊँचा चढ़ाकर बैठा देंगी तो लोग क्या कहेंगे ?' इससे स्पष्ट होता है कि निम्न जाति के लोग अपने आपको मान-सम्मान के हकदार भी नहीं समझते। मंगिया का कथन दलितों की मानसिकता को दर्शाता है। वे अच्छे कर्म करें, कोई उसे अच्छा कहे तो भी वे उसका स्वीकार नहीं करते।

समाज में जातीय भेदाभेद होने पर भी अवैध सम्बन्धों में कमी नहीं है। इस पर भी साहित्यकारों ने प्रकाश डाला है। डाक्टर पांडे और मंगिया के अवैध संबंध से सोहन का जन्म होना इसका प्रमाण है। शिक्षा व्यवस्था में जातीय भेदाभेद रहा है। अछूतों को कक्षा के बाहरबिठाने की प्रथा है। डॉ. पांडे सोहन की शिक्षा के बारे में कहता है - ''यहाँ तो कोई सोहन को किसी स्कूल के क्लरा में घुसने नहीं देगा और क्लास से बाहर बैठकर उसकी कोई पढ़ाई-लिखाई होने से रही। अत: उसे ईसापुर के मिशन स्कूल में दाखिला मिल सकता है।'' यहाँ स्पष्ट होता है कि स्कूलों, शिक्षा-संस्थानों में भी जाति के प्रति भेदभाव स्थित है। परंतु ईसाईयों की मिशनरी में इसके दर्शन नहीं होते। पढ़े-लिखे व्यक्ति भी जातीयता के शिकार हैं। दलित जैकब बुद्धि के बलपर पढ़ता है परंतु दिलीप सिंह उसका अपमान करते हैं। सैमुअल का लड़का जैकब इम्तिहान में फर्स्ट डिवीजन में पास होने पर उसके ही स्कूल के भूगोल के अध्यापक विन्स्टन दिलीप सिंह अपने लड़को को डांटते हुए कहते है कि 'वह भंगी का बेटा तो फर्स्ट डिवीजन में पास हुआ है और तुम सुसरे, निकम्मे जमाने भरके राजपूतों के बेटे होकर भी थर्ड डिवीजन में पास हुए हो।''[25] दिलीप सिंह विकृत मानसिकता का प्रतीक है।

महेन्द्र जोशी और नंदकुमारपंत द्वारा स्वार्थ की पूर्ति हेतु ईसाई धर्म स्वीकारने पर उन्हें गांव के लोग कुलकलंक, भ्रष्ट, म्लेच्छ विधर्मी इत्यादि संज्ञाओं से विभूषित करके भेदभाव पूर्ण वर्ताव करते दिखाई देते हैं। धर्म परिवर्तन करने पर भी निम्न जाति के साथ कोई अच्छा बर्ताव नहीं करता। एडगर अपनी पत्नी जेनी से कहता है कि 'देशी ईसाईयों में तो ज्यादातर लोग नीची जाति के हैं और उनकी समाज में कोई हैसियत भी नहीं है।' इस प्रकार यह भेदभाव की नीति सभी धर्मों-सम्प्रदायों में स्थित है और इसे भी उपन्यासकार ने यहाँ स्पष्ट किया है।

'एकलव्य' उपन्यास में चंद्रमोहन प्रधान जीने महाभारतकाल की कथावस्तु का वर्णन किया है। उस समय भी जाति भेदभाव का पालन लोग कड़ाई से करते थे। यह भेदभाव सभी स्तर पर माना जाता था, चाहे वह राज-काज से संबंधित हो अथवा व्यवसाय एवं शिक्षा से। एकलव्य द्रोण से पूँछता है कि आप तो ब्राह्मण हैं फिर आपको क्षत्रियोचित शिक्षा क्यों प्रदान की ? इस पर वे क्रोधित होकर कहते हैं - ''ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ वर्ण है,

वह कुछ भी कर सकता है, उसे क्षम्य है। उसे क्षत्रियों को शिक्षा भी देनी होती है। क्षत्रिय की सीमा उससे संकुचित है, और वैश्य की तो और भी। शूद्र अधिकार हीन ही है, अतः तुम्हारा आक्षेप अनुचित है।''[26] यहाँ पर स्पष्ट होता है कि उस समय शूद्र को कोई अधिकार नहीं था। उसे सिर्फ सेवा-कर्म के लिये उपयोग में लाया जाता था और उन्हें सभी प्रकार की सुविधा से दूर रखा जाता था।

'आग-पानी आकाश' उपन्यास में भी जाति भेदाभेद को स्पष्ट करने का रामधारी सिंह दिवाकर जी ने प्रयत्न किया है। यहाँ पर दो प्रकार के जातिभेद दिखाई देते हैं, एक सवर्णों द्वारा निम्न जातियों के प्रति भेदभाव, दूसरा शिक्षित दलितों द्वारा दलित जाति के प्रति भेदभाव पूर्ण बर्ताव। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने आधुनिक दलितों द्वारा भी उनके स्वजाति के लोगों के साथ भेदभावपूर्ण नीति और शोषण की कहानी को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। दलितों द्वारा दलितों के प्रति होनेवाले जातिभेद को स्पष्ट करते हुए उसके प्रति उपन्यासकार द्वारा दिये गये दिशा-निर्देश को स्पष्ट करेंगे।

आज भी शिक्षा व्यवस्था में पाठशाला के बाहर दलितों को बिठाने की प्रवृत्ति रही है। युगेश्वर और भागवत इसके लिए अपवाद नहीं हैं। युगेश्वर और भागवत को गांव के खाजगी स्कूल में उसके पिता द्वारा किये गये प्रयत्न से दाखिला मिलने पर उन्हें एक किनारे, बोरी पर बैठाया जाता है। हरिजन टोली के रामसजीवन के साथ पंडित शोभाकांत झा इसी तरह का व्यवहार करते हैं। जब रामसजीवन पाठशाला के बाहर बोरी बिछाकर अलग बैठने को तैयार हुआ तब उसे पाठशाला में प्रवेश प्राप्त हुआ। स्कूल के चांपाकल पर पानी पीने के बारे में भी भेदभाव किया जाता था। इसके बारे में स्वीकृत विधान था कि - ''जब ऊँची जाति के बच्चे पानी पीते रहते तो नीची जाति के बच्चों में से कोई चांपाकल की जगत पर पांव नहीं रख सकता था। जब नीची जाति के बच्चे पानी पीते रहते तो सवर्ण वर्ग के बच्चे एकदम अलग खड़े रहते। सवर्ण वर्ग के बच्चों को चांपाकल में मुँह सटाकर पानी पीने का अधिकार था, परंतु नीची जाति के बच्चों को दोनों हथेलियों में पानी लेकर चुल्लू से पीना पड़ता था। यहाँ स्पष्ट होता है कि छुआछूत की भावना, अलग पनघट, सवर्णो का दलितों से दूर रहना, आदि सच्चे भेदाभेद दिखाई देते हैं। पटना के कॉलेज में जाति प्रमाण-पत्र द्वारा युगेश्वर की जाति का पता लगने पर छात्रावास में सवर्णों के बच्चों द्वारा उसके बिछौने पर पानी डालना, भोजनालय में एक साथ खाना खाने से मना करना, एक साथ बैठने से मना करना आदि रूप में जातीय भेदाभेद दिखाई देता है। यहाँ पर हरिजन के बच्चों के स्पर्श से सवर्णों का अछूत होने का डर दिखाई देता है जिसके कारण ही उन्हें अलग बैठाया जाता है। उनके स्कूल आने पर रजपुताही के ऐंठे हुए लड़के कोई न कोई गंदी बात कहते रहते थे। जैसे - ''सारे कुत्ते काशी चले जाएंगे तो हड़िया कौन चाटेगा ? सब चमार जगजीवन बनेंगे तो 'मरी' कौन उठाएगा? जूते कौन सियेगा ? बैल गाय कौन चरायेगा?''[27]

भागवत बाबू द्वारा डिग्री कॉलेज खोलने पर प्रो.नीलाम्बर झा को प्राचार्य बनाया जाता है क्योंकि पटना विश्वविद्यालय में मैथिल ब्राह्मणों का वर्चस्व रहा। यदि अन्य जाति का प्राचार्य बनता है तो वहाँ पर जातिभेद के कारण कोई काम नहीं हो सकेगा। यहाँ भी जातिभेद की स्थिति दिखाई देती है और उनके द्वारा प्रो झा को प्राचार्य बनाने की बात की शिकायत करते हुए प्राध्यापक यादव भागवत बाबू के मामा मंत्री सुमरित लाल बैठा से कहते हैं कि - 'भागवत बाबू बभनपेंच में पड़ रहे हैं। नीलाम्बर झा घाघ आदमी है, वे बहुत चालू आदमी हैं, वे भागवत बाबू को लेकर डुबा देंगे। और ऐसा समय आयेगा कि भागवत बाबू को कॉलेज से भागना पड़ेगा।' यहाँ स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार सवर्ण निम्न जाति के लोगों से भेदभाव करते हैं तथा विश्वास नहीं करते उसी प्रकार निम्न जाति के लोग सवर्णों के प्रति अविश्वास रखते हैं उनमें बदले की भावना दिखाई देती है। गांव के निम्न जातियों में भी भेदभाव दिखाई देता है। डोम और धरकार दोनों जातियाँ एक जैसे दिखाई देती हैं परंतु डोम धरकार को अपने से हीन समझता है और धरकार डोम को। डोम अपनी बिरादरी के भोज-भात में धरकारों को सम्मिलित नहीं करते तो धरकार डोमों को नहीं करते। वैसी ही स्थिति बब्बन धोबी ने कस्बे में पैदा कर दी थी। वे राजपूतों के कपड़े धोने से अपने को 'राजधोबी' मानने लगे बाकी के अन्य धोबियों को अपने से हीन मानते थे। उसने अपने को अन्य धोबियों से अलग करना शुरू किया। कपड़े धोने का काम वह भी करता था, लेकिन खुद को धोबी जाति का नही राजधोबी वैश्य जाति का मानता था।

पढ़ा-लिखा दलित अपने भाई से, दलितों से दूर जा रहा है। उनमें अपनी अलग पहचान रखने की प्रवृत्ति रही है, उस पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। आलोक कुमार के पिता द्वारा राम सजीवन के साथ किया व्यवहार इसी बात का प्रमाण हैं। वे कस्बे में पुलिस इंस्पेक्टर चमार थे। उनके बेटे आलोककुमार के कहने पर रामसजीवन उसके घर जाता है। आलोककुमार अपने माँ-बाप से उसका परिचय यह कहकर कराता है कि यह भी अपनी जाति का है। तो उसके माँ-बाप का बर्ताव बदल जाता है वे उसे घर के बाहर बरामदे में ही बैठाते हैं, उन्हें कुछ खाने-पीने के लिए नहीं पूँछते। उसकी जाति की वजह से उसका अपमान करते हैं। अपमानित राजसजीवन वापस चला जाता है। वह स्वजाति के लोगों द्वारा खुद को हीन समझने पर दुखी होता है। जातीय भेदाभेद एवं शोषण का एक अनोखा उदाहरण लगता है। यहाँ स्पष्ट है कि बदलते हुए युग में दलितों द्वारा भी दलित लोगों के साथ भेदभाव किया जा रहा है तथा सवर्णों द्वारा भी गरीब दलितों का तिरस्कार और अपमान किया जा रहा है जिसे दिवाकर जी ने बड़ी ही कुशलता और मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। पाठशाला, पनघट, बैठक व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था आदि जातीय भेदाभेद के विविध आयाम यहाँ दिखाई देते हैं।

12) जातीय पंचायत :-

भारतीय समाज व्यवस्था का संबंध राजनीतिक व्यवस्था के साथ रहा है। प्राचीन कालीन समाज व्यवस्था में सामाजिक कल्याण की भावना थी, तो आज की राजनीति में व्यक्ति विकास पर बल दिया है। राजनीतिक परिस्थिति के तत्व में सरकार राजनीतिक दल, जनता और जाति पंचायत है। स्वातंत्र्यपूर्ण काल में जाति पंचायत राजनीतिक व्यवस्था का प्रतीक थी, जो जाति संबंधी झगड़ों पर निर्णय देती थी। वह न्याय व्यवस्था का कार्य करती थी। जाति पंचायत जाति तथा समाज के हित के लिए कार्य करने वाली, न्याय देने वाली सामाजिक संस्था है। जाति पंचायत के प्रमुख को 'मुखिया' कहा जाता है। उसके नियम परम्परागत, अलिखित होते हैं। यह पंचायत गांव के बाहर होती है। विवाह, चोरी, ड़कैती, कत्ल आदि पर यह निर्णय देती है, जिसका सभी स्वीकार करते हैं। परंतु आज इसके प्रति विद्रोह भी दिखाई देता है। आलोच्य उपन्यासों में इसका चित्रण हुआ है।

'खारे जल का गांव' उपन्यास में डॉ. भगवती प्रसाद शुक्लजी ने गोदावल मेले के बाहर मैदान में हो रही पंचायत का उल्लेख किया है जिसमें जाति पंचायत में पतिहाई जातियों के चौधरी इकठ्ठा होते हैं। गोदावल के मेले में सालभर में एक बार नाऊ, खटिक, सोनार, चमार, कुरमी, तेली, कोल, गोंड आदि जातियों के मुखिया इकठ्ठा होते हैं। अलग-अलग समूह में पंचायतें होती है, भेंट-अकवार होता है। इन पंचायतो द्वारा किसी को जाति से बाहर करना, किसी को भाजी-कोदई लगाना, किसी को कुछ तथा किसी को कुछ लगाकर दण्डित किया जाता है। लेकिन कभी-कभार इनमें लड़कियों की शादियाँ भी तय हो जाती है। गरीबों का उद्धार हो जाता हैं। इस प्रकार यहाँ स्पष्ट होता है कि जाति पंचायत की व्यवस्था में दिये जाने वाले दण्ड के परिणाम स्वरूप ही उत्पन्न भय के कारण गांव में कोई जल्दी किसी प्रकार की अनैतिकता पूर्ण कार्य नहीं करता। पंचायत की बैठक व्यवस्था के बारे में भी डॉ.शुक्ला ने निर्देशित किया है कि चारपाई पर गांव के पंच ठाकुर करनसिंह, दुलारे सेठ, हरजीत सिंह आदि बैठ्ते हैं तो पंच जगेस्सर कोल, ददई चमार, अगसिया तेली नीचे जमीन पर बैठ्ते हैं।

अरविन्द चमरहटी में लोगों को ज्ञान देने के लिये, साक्षर बनाने के लिए, संगठन करने के लिए, उनको मार्गदर्शन करने के लिये प्रौढ़ शिक्षा का केंद्र खोलता हैं। इसका ब्राह्मणों द्वारा बम्हनौटी में पंचायत बुलाई जाती है। ब्राह्मणों द्वारा बम्हनौटी में पंचायत का आयोजन करके फैसला दिया जाता है कि "अरविन्द चमारन केर हाथ केर पानी पियत हय। खटिकन के हेन रोटी खात हय , कुर्मी के हेन भात खात हय, ये से जात से बाहर कई दीन गा। अगर देवसेवक राम ओही अलग न करै तो उनका हुक्का-पानी बंद कीन्ह गा।"[28] यहाँ स्पष्ट है कि निम्न जाति के साथ-साथ उच्च जातियों में भी जाति पंचायत होती है। उसका कड़ाई से पालन किया जाता है। शादी-ब्याह तथा पारिवारिक झगड़े के कारण यदि परिवार में अलगाव की समस्या उत्पन्न होती है तब उसके

निवारण के लिये भी जाति पंचायत को बुलाकर फैसला किया जाता है। ऐसे ही चनकी का गौना होने पर वहाँ ससुराल में किस्सूसिंह की जबरदस्ती का विरोध करने पर उसके पति छिद्दन चमार द्वारा उसे पीटा जाता है जिसके कारण वह ससुराल छोड़कर अपने मायके आती है। मायके में छिद्दन पंचायत बुलाकर इस समस्या को सामने रखता है जिस पर पंचायत फैसला देती है कि - ''या तो ददई, छोर-छुट्टी के तीन सौ रूपिया छिद्दन को दें या लड़की को बिदा कर दें!''[29] इस प्रकार यहाँ पर स्पष्ट होता है कि गांव की समस्याओं को हल करने में जातीय पंचायत की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा इसे उपन्यासकार ने दर्शाया हैं।

जगदीश चंद्र जी ने उपन्यास 'धरती धन न अपना' में भी जातीय पंचायत का चित्रण किया है। तथा पंचायत का विरोध करने वाले मंगू को भी दिखाया है। उपन्यास का नायक काली छह साल के बाद अपने गांव वापस आने पर अपने पुराने टूटे-फूटे मकान की जगह नया पक्का मकान बनाने के लिये जब बुनियाद खोदने लगता है तब मंगू चमार द्वारा भड़काने के कारण निक्कू झगड़ा करता है। काली द्वारा पंचायत बुलाने पर पंचायत के निर्णय का विरोध करते हुए वह कहता हैं कि - ''मैं किसी पंचायत को नहीं मानता,एक तो मेरी जमीन खा रहा है और ऊपर से धौंस दे रहा है।''[30] बग्गा चमार द्वारा बूटा सिंह चौधरी के लड़के पालों को मारने पर भी पंचायत बुलाई जाती है। यहाँ पर पंचायत की बैठक व्यवस्था के बारे में उपन्यासकार ने जिक्र किया है कि पंचायत में चौधरी, मुंशी, हरनामसिंह, महाशय तीरथराम चारपाई पर बैठे थे और चौधरियों के बच्चे चारपाई के पास खड़े थे और चमारों के बच्चे परे हटकर तपती जमीन पर बैठे थे। पंचायत में लोगों ने कहा कि बग्गा और उसके घरवालों का बाईकाट करना चाहिए, सारे चमारों पर सौ जूता मारकर एक गिन जाए तथा एक चौधरी का सुझाव था कि 'बग्गे को पुलिस के हवाले कर दिया जाए।' इस प्रकार पंचायतों के आयोजन पर तथा उसके निर्णय के पालन तथा विरोध को बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है।

'मोरी की ईंट' उपन्यास में मदन दीक्षित जी ने जातीय पंचायत का वर्णन किया है। जब उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र मंगिया को उसके पति को चुंगी की नौकरी मिलती है, तब उसे हेल्थ आफीसर की कोठी पर कार्य करने हेतु नियुक्त किया जाता है। डाक्टर द्वारा रहने के लिए नौकर का कमरा देने पर वह अपने पति की रोटी-पानी का इंतजाम करके वहाँ रहने के लिए आने पर पति झरगदिया द्वारा पंचायत बुलाई जाती है। पंचायत फैसला देती है कि - ''मंगिया की तरख्वाह मेंसे आठ आने झरगदिया को मिलेंगे और उसमें वह खुद अपने खाने-पीने का इंतजाम करेगा। बिर्त के ठिकानों का इंतजाम मंगिया अपनी मर्जी से करेगी और झरगादिया को उससे कोई सरोकार नही रहेगा।''[31] यहाँ स्पष्ट है पारिवारिक समस्या हल करने का कार्य पंचायत करती है। इस उपन्यास में धर्म परिवर्तन को ही प्रमुखता देने के कारण जातीय पंचायत का अधिक उल्लेख नहीं मिलता है।

'एकलव्य' उपन्यास की कथावस्तु महाभारत कालीन है। अत: उस समय राजवंशों में न्यायाधीश की नियुक्ति हुआ करती थी। आदिवासी जातियों में पंचायत व्यवस्था थी परंतु उपन्यास का अध्ययन करने पर इसमें उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। निषादों में खुद उनके राजा हिरण्यधनु न्यायदान का कार्य करते दिखाई देते हैं जिसमें दस्युओं द्वारा ग्रामवासियों को लूटने पर निषादराज ने उसकी पूर्ति के लिए सेनापति को खजाने से देने की बात कहते हैं। अत: राजा स्वयं न्यायदान करते दिखाई देते हैं।

रामधारी सिंह दिवाकर द्वारा लिखित उपन्यास 'आग-पानी आकाश' में आधुनिक काल की समस्याओं का वर्णन है। इसमें सरकारी अफसरों द्वारा दण्डित करना और करवाना तथा राजनीतिक नेताओं द्वारा हस्तक्षेप दिखाई देता है परंतु जातीय पंचायत और उसके फैसले का उल्लेख नहीं मिलता है। अत: यहाँ स्पष्ट होता है कि आठवें-नववें दशक में जातीय पंचायत का अधिक बोलबाला था परंतु अब जातीय पंचायत का प्रभाव धीमा पड़ते दिखाई दे रहा है। लेकिन सरकार फिर से उसे मजबूत करने का प्रयास कर रही है। यहाँ स्पष्ट है जातिव्यवस्था के साथ-ही-साथ जातीय पंचायत का प्रभाव है। पंचायत का महत्व आज बरकरार रहा है। न्यायव्यवस्था का कार्य करने वाली यह व्यवस्था आज अपना महत्व स्थापित कर रही हैं, ऐसा लगता है।

13) संगठन एवं समूह भावना :-

मानव जीवन समूह का आदती है। समाज की निर्मिती के पीछे यही भाव रहा है। संकट से मुकाबला करने के लिए, स्वरक्षा के लिए समूह, संगठन बनाया जाता है। शोषित, उपेक्षित, दलित समाज भी आज संगठित हो रहा है। संगठन के बल पर अपने अधिकार और हक्क मांग रहा है तथा उसकी उसे प्राप्ति हो रही है। आम्बेडकरजी का "संगठित बनों और संघर्ष करो" यही नारा इसके मूल में है। आलोच्य उपन्यासों में इस पर चिंतन किया है।

'खारे जल का गांव' उपन्यास में उपन्यासकार डॉ.भगवती प्रसाद शुक्लजी ने संगठन एवं समूह भावना के चित्रण पर प्रकाश डाला है। गांव के चमरहटी में सुग्रीव, नरइना को पीटना, मटिया, पुनिया और चनकी को किस्सू सिंह और बिस्सूसिंह द्वारा अपमानित करना, पुलिस द्वारा दोनों ओर से रूपये लेकर मामले को रफा दफा करना आदि के खिलाफ शिवमंदिर के सामने अरविन्द नवयुवकों की बैठक बुलाकर संगठन के बल पर अन्याय के खिलाफ लड़ने की सलाह देता हुआ कहता है कि "गांव में इधर दो-तीन महीने से जो घटनाएं हुई हैं, यदि गांव के तरुण इन घटनाओं को तटस्थ होकर देखते रहे तो हमारे समाज का उन्नयन कभी नहीं होगा। गांव की लड़कियों को अकारण बेइज्जत तथा तरूणों को पीटा जाता रहेगा और हम असहाय देखते रहने के अलावा कुछ नहीं कर पायेंगे। हम संगठन बनाकर इन सबका प्रतिरोध कर सकते हैं। जनता को जगा सकते हैं। गरीबों, मजदूरों, किसानों को संगठित कर सकते हैं।" फसल की कटनी के समय कोल, खटिक, भंगी, काछी, कोरी,

जाति के मुखियों की एक सभा करके उनसे अनियाव करने वालों की फसल न काटने को कहता है। सुग्रीव एक सूची बनाने की सलाह देता है जिसमें जिनके खेत में कटाई नहीं करने के लिए तथा जिनकी पिटाई करनी है उनके नाम लिखने की बात करता है। लोगों ने खेत में कटनी नहीं किये तथा किसी ने बिस्सू सिंह पर हमला करके घायल कर दिया। लोगों ने हड़तालकर दिया, मजदूर शोषित संगठित होकर सूची बनाकर प्रतिरोध लेते हैं। अन्याय करने वाले जमींदारों की सहायता न करने का निर्णय साहसी लगता है इसके पीछे उनकी समूह भावना रही है। यहाँ पर स्पष्ट है कि मुश्किल कामों को भी संगठन करके आसान किया जा सकता है।

भ्रष्टाचार और प्राकृतिक आपदा से राहत पाने के लिए संगठन एवं लोगों में एकता की भावना का होना अनिवार्य है। इसके बल पर सभी समस्याएं हल होती है। इस पर विचार करते हुए उपन्यासकार ने ऐसी ही घटना का यहाँ चित्रण किया है। अकाल पड़ने पर सरकारी अनुदान से तालाब और कुओं की मरम्मत के कामों में होने वाले भ्रष्टाचार के विरोध में लोगों में प्रतिरोध की भावना जागृत करने के लिए योजना बद्ध तरीके से 'नवयुवक क्रांति मोर्चा' का गठन करके उसके द्वारा लोगों को संगठित करने का कार्य अरविन्द करता है। नवयुवक क्रांतिकारी मोर्चे के इश्तिहार द्वारा मांग की जाती है कि "मजदूरों को कम से कम मजदूरी ढाई रुपये हो, पीने के पानी की अविलम्ब व्यवस्था हो, गांव में एक कॉलेज और एक प्रायमरी हेल्थ सेंटर खोले जाएं।"[32] इसके तीसरे दिन सरकारी तालाब पर काम करने वालो मजदूरों ने हड़ताल कर दिया। जुलूस निकाला, जिससे गांव में तनातनी बढ़ गई, परिणाम स्वरूप सेठ रामगरीब ने सरकारी तालाब वाले दस सरगना मजदूरों को काम से निकाल दिया जिसके कारण सभी मजदूर जुलूस में शामिल होकर नारे लगाने लगे। यहाँ पर स्पष्ट होता है कि मजदूर संगठित होकर अपने हितों की रक्षा और अधिकारों की प्राप्ति करने में सफल हो जाते हैं।

जाति के नाम पर गांव के महाजन संगठित होकर चंदा इकठ्ठा करके 'केसरवानी महाविद्यालय' की स्थापना करते हैं। जाति के नाम पर लोगों में एकता की भावना और नजदीक आने की भावना दिखाई देती है। लोग अपनी जाति के नाम के लिए तथा जाति के विकास के लिए इकठ्ठा होकर अधिक से अधिक धनराशि दान करते हैं तथा नैसर्गिक आपत्ति से सामना करते हैं। अत: स्पष्ट होता है कि समूह में बहुत ताकत होती है। इसका समुचित एवं योजना बद्ध तरीके से उपयोग करने वाले नेतृत्व की आवश्यकता है।

जगदीश चंद्र जी ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में भी संगठन एवं समूह भावना का चित्रण किया हुआ है। अधिक वर्षा के कारण घोड़ेवाहा गांव डूबने की आशंका होने पर बांध काटकर गांव को बचाया जाता है। बाद में पानी के बहाव से हुए खड्डे तथा शगाफ को भरने के लिए चौधरियों द्वारा चमादड़ी के लोगों को दिहाड़ी नहीं देने पर झगड़ा होने से पंचायत होती है। वर्ग संघर्ष शुरू होता है। चमादड़ी के लोगों द्वारा चौधरियों के यहाँ काम न करने की घोषणा के साथ 'बाइकाट' किया जाता है। चमादड़ी के लोग भूख से जादा

पीड़ित होते हैं। जब उनकी कोई सहायता नहीं करता तब लोग समझौता करके फिर से काम पर जाते हैं। यहाँ पर वर्ग संघर्ष के द्वारा संगठन बनाने का कार्य उपन्यास का नायक काली करता है। काली का मार्गदर्शन मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित डाक्टर बिशनदास और कामरेड टहलसिंह करते हैं। संगठित होने पर सफलता मिलती ही है ऐसा कहना उचित नहीं। सफलता न मिलने पर भी सामूहिकता का होना, एकता बनाये रखना उतना ही महत्वपूर्ण है यही संदेश यहाँ उपन्यास देता है। समझौता करने के लिए अन्त में मजबूर होने वाले भूखे चमार लोग असफलता का प्रतीक नहीं बल्कि चेतना का प्रमाण है ऐसा मुझे लगता है।

'मोरी की ईंट' उपन्यास में उपन्यासकार मदन दीक्षित ने चुंगी के मेहतरों को संगठित करके अलीगढ़ में 'मेहतर संघ' के प्रभावशाली संगठन के रूप में प्रतिष्ठित होने की घटना का चित्रण किया है। भारत-पाकिस्तान के बंटवारे के समय मेहतर बस्ती की महिलाएं मंगो - रम्पिया - रधिया के तिगुट्ट ने, मौहल्ले की घघरिया प्ल्टन की कमाण्ड मजबूती के साथ सम्भाल ली थी। मंगिया, रधिया तथा रम्पिया के मार्गदर्शन में इकठ्ठा होकर औरतों के ऊपर हो रहे अन्याय को दूर करने का भी चित्रण किया है। इन महिलाओं के संगठन द्वारा गांव में अछूत मेहतर लोगों के जीवन को एक दिशा प्राप्त होती है तथा चुनाव में उन लोगों को वोट का अधिकार प्राप्त होता है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में कई जगहों पर ईसाईयों के संगठित होने एवं मिशनरी की स्थापना करके अछूतों का उद्धार करते दिखाया हैं। संगठन की शक्ति का जिक्र किया है। साथ ही जादा से जादा धर्म परिवर्तन की बात का चित्रण किया है। कुछ स्थानों पर ही संगठन एवं समूह भावना का चित्रण किया हैं।

'एकलव्य' उपन्यास में उपन्यासकार चंद्रमोहन प्रधान जी ने महाभारत काल की कथा का आधार लिया है उसमें वनवासी और जनजातीय लोगों को संगठित करके दस्युओं से उनकी रक्षा का वर्णन किया गया है। वस्तुत: उस समय तो विविध प्रान्तों के राजाओं द्वारा सैन्यबल इकठ्ठा करके ही राज्यों की रक्षा करने का कार्य किया जाता था। फिर भी आदिवासियों, निषादों, किराटों, हीन जातियों में संगठन एवं समूह की भावना का चित्रण उपन्यासकार ने अत्यन्त कुशलता से करके आधुनिक काल में उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला है तथा उसके महत्व को समझाने का प्रयत्न किया है।

रामधारी सिंह दिवाकर ने 'आग-पानी आकाश' में अधिकांशत: दलितों के शिक्षित होने तथा अपना स्वार्थ सिद्ध करने की बातों पर और सवर्णों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की नीति पर बल दिया है। उपन्यास में संगठन एवं समूह भावना का चित्रण दिखाई देता है। पसियान टोला का करमलाल महतो जो कि बी.ए. पास है। वह गांव टोला के लोगों को संगठित करके भागवत बाबू के षड्यंत्र के खिलाफ आवाज उठाता है तथा ताड़ीखाना को हटाने का विरोध करता है। इस पर भागवत बाबू सरकारी अफसरों की सहायता से उसे डकैती के झूठे आरोप लगाकर 'गुंडा एक्ट' में जेल में बंद करवाता है। स्पष्ट है कि संगठन का विचार करने वालों को

पूँजीपतियों और सरकारी अफसरों की सांठ-गांठ से किस प्रकार शोषित किया जाता है, इसका मार्मिक चित्रण उपन्यासकार ने किया है।

यहाँ स्पष्ट है संगठन और समूह भावना की ताकत पर लोग बड़े से बड़े संकटों का सामना कर सकते हैं तथा अन्यायी, अत्याचारी के विरुद्ध लड़ सकते हैं। और अपना शोषण रोक सकते हैं। यही दिखाने का प्रयत्न सभी उपन्यासकारों का दिखाई देता है। दलितों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संगठित होना जरुरी है। इस पर भी सभी उपन्यासकारों ने बल दिया है। अकाल, बाढ, भ्रष्टाचार, अन्याय, शोषण के खिलाफ किया गया संगठित आंदोलन आदर्श रहा है। जाति के नाम पर संगठित होना कभी-कभी सांप्रदायिकता को बढ़ावा देता है, उस पर भी उपन्यासकारों ने प्रकाश डाला है।

14) राजनीतिक स्थिति :-

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय समाज जीवन का सम्बन्ध राजनीति के साथ रहा है। राजनीतिक चर्चा, चुनाव का सिलसिला शुरू हुआ। राजनीति, भ्रष्टाचार, दलबदल, धर्म के नाम पर चुनाव लड़ना, आरक्षण आदि विविध रूप में राजनीति के दर्शन होने लगे। सुमित्रा त्यागी के मतानुसार - ''चालाक नेताओं ने भोली-भाली जनता को कल्याण का स्वप्न दिखाकर अपनी स्वार्थ सिद्धि की।''[33] इस बदलते राजनीति के कारण दलित जीवन शोषित रहा है। आलोच्य उपन्यासों में इस परिवर्तित राजनीति का चित्रण हुआ है।

'खारे जल का गांव' में उपन्यासकार ने राजनीतिक स्थिति का चित्रण विस्तार रूप में किया है। यहाँ पर गांवों की पंचायती राजनीति से लेकर विधायक और सांसदों की राजनीति तक का चित्रण किया है। गांव की राजनीति में रग्घू पंडित के जीवन चरित्र को दर्शाया है। बाद में गांव में अरविन्द भ्रष्टाचार के विरोध में 'नवयुवक क्रांतिकारी मोर्चा' की स्थापना करके जुलूस निकालता है। जुलूस में पुलिस लाठी चार्ज में अरविन्द का सिर फटने के कारण उसे अस्पताल में भर्ती कराये जाने पर प्रदेश के वरिष्ठ मंत्री पंडित कमलकांत उसे देखने आने पर उसकी चोट के बारे में पूँछने के पश्चात कहते हैं - ''क्यों नाहक जीवन बर्बाद कर रहे हो ? हमारे दल में आ जाओ, तुम्हें विधान सभा की सदस्यता का टिकट दिला देंगे।''[34] राजनीति और भ्रष्टाचार का रूप अब यहाँ दिखाई देता है। अरविन्द के कहने पर कि मैं तो इस बार सिर्फ सरपंच का ही चुनाव लड़ना चाहता हूँ। मंत्रीजी ने उसे बाद में पछताने के बारे में कहकर चले गये। अरविन्द को अतीत की स्मृति याद आ जाती है, वह रींवा में 'साप्ताहिक क्रांति पथ' में नौकरी करता था और सम्पादकीय लेख लिखता है तब यही मंत्री महोदय के साथ मिलकर काम करता था। राजनीतिक षडयंत्र के अंतर्गत 'भारत छोडो' आंदोलन के दौरान नेहरू और जयप्रकाश बाबू की अपीलों का हवाला देकर युवकों को क्रांति करने के आवाहन का संपादकीय लेख लिखने के कारण 'साप्ताहिक क्रांति पथ' को पुलिस ने सील बंद करके ताला लगा दिया और पंडित कमलाकांत ने दूसरे सत्याग्रहियों

के साथ जेल पर हमला बोल दिया। लोगों ने घर में घुस-घुसकर निरपराध जनता को मारा। यह राजनीतिक फायदे के लिए तथा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए किया गया था। परिणाम स्वरूप चुनाव जीतकर मंत्री बने।

केसरवानी परिषद को राजनीतिक कार्य में सफलता मिलने पर उनकी महत्वाकांक्षा बढ़ जाती है। केसरवानी महाविद्यालय खोलकर उसका उद्घाटन महाराजा के करकमलों द्वारा करवाकर राजनीतिक फायदा उठाने का कार्य किया जाता है। मंत्री कमलकांत अरविन्द से कहता है कि - ''दीपावली के जुए का उधार और चुनाव के पूर्व के आश्वासन बराबर हैं। न उधारी कभी लौटायी जाती है, न आश्वासन कभी पूरे किये जाते हैं, नेता लोग किसी के सगे नहीं होते हैं, अपने मतलब के सगे होते हैं। स्पष्ट है कि राजनीतिक नेता लोग हर जगह पर राजनीतिक दांव-पेंच के द्वारा लोगों को गुमराह करते हैं तथा जनता का शोषण करते हैं। केसरवानी महाविद्यालय के छात्रसंघ तथा अध्यापक लोग भी राजनीति करते हैं जिसमें अध्यापकों के लिए लड़ाई लड़नेवाले तिवारी को निकालने पर वह कहता है कि ''यह गांव राजनीति से पीड़ित है तथा आपसी विद्वेष से जर्जरित है एवं जातिवाद से त्रस्त हैं। इसी कारण वह गांव को तथा केसरवानी महाविद्यालय को छोड़कर जा रहा है।''

बेवहारी गांव का चुनाव जातिवाद के आधार पर लड़ा जाता है। पंचायत के चुनावों में वोटों का हिसाब लगाते हुए रग्घू पंडित सोचते हैं कि बाम्हनों के सब 'वोट' राजनाराय सेठ को मिल जाएंगे। अरविन्द को कोई ब्राह्मण घास नहीं डालेगा। अगर वे नीच जाति के सौ लोगों के 'वोट' फोड़ लें, तो जीत निश्चित है। ठाकुर करन सिंह के खिलाफ लोगों के 'वोट' भी फोड़े जा सकते हैं। सेठ जी समर्थक कम होते देखने पर खुले आम मजदूरों, कोलों, चमारों से पांच रूपया प्रति 'वोट' की बोली लगा दीं। दूसरी तरफ अरविन्द के साथ भूखे-प्यासें गरीबों के समूह का समर्थन था, और वह जानता था कि आज का चुनाव पैसे से लड़ा जाता है फिर भी जीत का विश्वास था। चुनाव के दिन रग्घू पंडित के शामियाना में बीड़ी-चाय, पान का दौर चल रहा था तथा राजनारायण सेठ के शामियाना में मिठाई-जलपान की व्यवस्था थी। परंतु अरविन्द के साथी नीम के पेड़ के नीचे बैठकर लोगों को समझा रहे थे। चुनाव सम्पन्न होने के बाद परिणाम घोषित हुआ। अरविन्द विजयी होने पर जुलूस में लठैतो द्वारा आक्रमण करके अरविन्द को मारा जाता है। इस प्रकार उपन्यासकार ने राजनीति के कई पहलुओं का खास ढंग से चित्रण किया है। उपन्यासकार ने भ्रष्ट राजनीति के चित्रण कराकर भारतीय राजनीति की खाल उतारी है। आज की भी राजनीति इसी प्रकार रही है। वोट को नीलाम करना,जाति के हिसाब से राजनीति चलाना, विजयी जुलूस पर लाठी चलाना नेता को घायल करना, पीटना आदि के दर्शन आज भी हो रहे हैं। आदर्श लोकतंत्र के लिए यह खतरा लगता है। उसे ही उपन्यासकार ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में जगदीश चंद्र जी ने पंजाब प्रान्त के रल्हन गांव के चमारों की व्यथा-कथा तथा धर्म परिवर्तन और वर्ग संघर्ष के साथ उनके शोषण, उत्पीड़न की कथा का चित्रण किया है।

उसमें राजनीति का कोई चित्रण नहीं मिलता है। चौधरियों द्वारा गांव का संचालन किया जाता है। थोड़ी नियमों और कानूनों की जानकारी रखने वाले घड़्डम चौधरी उर्फ नत्थासिंह का चित्रण तथा मार्क्सवादी विचारों का प्रतीक डाक्टर बिशनदास और कामरेड टहलसिंह का संक्षिप्त उल्लेख किया जाता है। गांव के राजकाज में दुकानदार छज्जूशाह और मुंशीजी का सहयोग दिखाई देता है।

मदन दीक्षित ने 'मोरी की ईंट' में देश के विभाजन के समय तथा आजादी के आंदोलनों का उल्लेख किया है तथा 1857 के गदर का और चुंगी बोर्ड के चुनाव का चित्रण किया गया है। जिसमें मुंशी इनायत हुसैन और चेअरमैन साहब तथा जमादार हीरालाल की राजनीति का वर्णन किया गया है। जैकब और गिल्बर्ट साहब के बीच में राजनीतिक चर्चा चलती है।

राजनीतिक स्वार्थ और पाखंड के बारे में जैकब कहते हैं - करूणा, सेवा, सद्भाव और त्याग का धर्म तो राजनीतिक खूनी पंजों से अपनी जान बचाते हुए मारे-मारे फिर रहे हैं। यह तो राजनीति ही है जो हर तरह के पाखंड को धर्म का बाना पहनाकर अपना मोहरा बनाने का कोई मौका चूकना नहीं चाहता। राजनीतिक लोगों द्वारा अपने स्वार्थ की पूर्ति की बात को स्पष्ट करते हुए जैकब बताता है कि - ''हमारी समस्या पन्द्रह सौ वर्षों से जड़ पड़ी हुई, जन्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था है। हम हिन्दू, मुस्लिम, सिख्ख या ईसाई कुछ भी हों, लेकिन इसी व्यवस्था को बंदरिया के मरे हुए बच्चें की तरह छाती से चिपटाए बैठे हैं। इस व्यवस्था में आर्थिक-सामाजिक सत्ता की चोटी पर अलग-अलग खेमों में बैठे हुए लोग, अपने-अपने आर्थिक राजनैतिक हित साधने के लिए हर समस्या को धार्मिकता का पुट देकर उलझा देते हैं।''[35] यहाँ स्पष्ट है धर्म और राजनीति, राजनीति और जाति व्यवस्था का संबंध रहा है। आज की राजनीति स्वार्थ के सिवाय और कुछ नहीं है। त्याग, सेवा का स्थान भोग, वासना ने लिया है जैकब का कथन इसी बात का प्रमाण है।

'एकलव्य' उपन्यास में उपन्यासकार ने महाभारतकालीन कथा का वर्णन किया है और उसके माध्यम से आज के राजनीतिक भेदभाव एवं बदले की भावना से पीड़ित नेताओं की मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न आचार्य द्रोण के माध्यम से किया है। राजा द्रुपद द्वारा आधा राज्य न प्राप्त होने पर उनके विरुद्ध कुरूवंश के राजकुमारों को तैयार करने के लिये प्रशिक्षण देते हैं। प्रशिक्षण केंद्र में भी सूतपुत्र कर्ण और निषाद एकलव्य के साथ राजनीतिक एकता के विरुद्ध षडयंत्र करके उन्हें दमित करते हैं। तो एकलव्य राजनीति में सभी लोगों को एकत्रित करने, उन्हें आत्मरक्षित बनाने, शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के लिए संगठन बनाने पर बल देने वाले पात्र का चित्रण किया गया है। स्पष्ट है उस समय चुनाव नहीं होता था परंतु राज्यमंत्री होते थे जिसके कारण भी राजनीतिक चित्रण आता है। गांधार के युवराज ने बदले की भावना से ही कुरूवंश में भेद डालकर, आपस में लड़ाकर अपनी इच्छा पूर्ति की। यह राजनीतिक चाल रही है ऐसा दिखाई देता है।

रामधारी सिंह दिवाकर जी ने 'आग-पानी आकाश' में राजनीतिक चित्रण प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। इसमें जाति के आधार पर 'वोट' मांगने तथा चुनाव लड़ने और आरक्षण की सुविधा का फायदा उठाने का वर्णन किया है। भागवत बाबू के चुनाव प्रचार के लिए रामसजीवन को भेजते हुए युगेश्वर वैश्यंत्री कहते हैं कि - "तुम क्षेत्र में जाकर प्रचार करो और कांस्टीटट्यूएंशी में सिर्फ अपनी जाति में घूमना। चमारों के भी बहुत वोट हैं। मैं तो ठहरा अफसर ! खुलकर तो कुछ नहीं कर पाऊँगा। पर्दे के पीछे तो सब कुछ चलेगा ही।"[36] इस प्रकार भागवत बाबू जाति के आरक्षण सीट पर चुनाव जीतते हैं। उनके मामा मंत्री सुमरित लाल बैठा भी हरिजनों की पॉलिटिक्स करते हैं और चुनाव लड़कर मंत्री बनते हैं। यहाँ स्पष्ट है कि आज की राजनीति में जातीयवाद के आधार पर चुनाव लड़ने की प्रक्रिया बढ़ रही है। उसे उपन्यासकार ने बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है ऐसा लगता है।

यहाँ स्पष्ट है स्वतंत्रतापूर्व काल में राजनीति सेवा, देशभक्ति का रूप थी। सन 1970 के पश्चात इसका रूप बदला। परिणामत: साहित्य में भी बदलते राजनीति का स्वरूप चित्रित होने लगा। आज की राजनीति सेवा न होकर सत्ता हथियाने का, स्वार्थ सिद्धि का, धन कमाने का, अवैध धंधे छिपाने का माध्यम बनी है। धर्म, जाति के आधार पर चुनाव लड़कर मंत्री बनने की इच्छा रखने वाले आज के नेता हैं। रामधारी सिंह दिवाकरजी ने अपने 'आग-पानी आकाश' में इसी बात को स्पष्ट किया है। 'खारे जल का गांव' का अरविन्द संगठन शक्ति के बल पर चुनाव लड़कर आदर्श नेता बनता है। तो राज्य के वरिष्ठ मंत्री विधान सभा का सदस्यत्व देने की बात करता है। भ्रष्ट राजनीति के यहाँ दर्शन होते हैं। पुलिस और राजनीतिक नेता के संबंध होने के कारण अवैध धंधे बढ़ रहे हैं। उस पर भी उपन्यासकार ने अंगुली निर्देश किया है। आलोच्य उपन्यासों में राजनीति का कम वर्णन होने पर भी यथार्थ लगता है। राजनीतिक लोग शोषितों की, पीड़ितों की सेवा के लिए कार्य करें तो राजनीति समस्या न होकर समाधान बनेगी ऐसा लगता है।

15) लोककथा :-

लोक साहित्य में लोककथाएं महत्वपूर्ण हैं। यह अलिखित होने के साथ-साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती हैं। शिक्षित, अशिक्षित दोनों की यह सम्पत्ति हैं। लोककथा में अंधश्रद्धा आस्था व परंपरा के दर्शन होते हैं। डॉ. इन्द्रपाल सिंह ने "देवी-देवता संबंधी कथा, सामाजिक कथा, जाति-कथा, ऐतिहासिक कथा आदि भेद किये हैं।"[37] दलितों में भी ऐसी लोककथाएं रही हैं, जिसमें देवी-देवता, राजा-रानी, इतिहास, जादू-टोना, जानवर, भूत-प्रेत, चुड़ैल, पशु-पक्षी आदि का उल्लेख है। आलोच्य उपन्यासों में निम्न लोककथाएं हैं-

'खारे जल का गांव' के प्रासंगिक में डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल जी ने प्राचीन लोककथा का उल्लेख किया है जिसमें विंध्याचल पर्वत के उठान को देखकर देवताओं में जलन होती है। जिसके कारण देवता लोग

उनके गुरू अगस्ति मुनि के सामने यह प्रश्न रखते हैं कि यदि इसी प्रकार यह पर्वत उठता रहा तो देश दो भागों में विभाजित हो जाएगा। अत: इसकी उठान को रोकना आवश्यक है। देवताओं की याचना को सुनकर अगस्ति मुनि विंध्याचल के पास आए। विंध्याचल जब अपने गुरू को प्रणाम करने के लिए झुका तब अगस्ति मुनि हमारे वापस आने तक झुके रहने का आदेश देकर दक्षिण दिशा की ओर चले गये और आज तक वापस नहीं आये। अगस्त विंध्य की यह कथा आज भी लोककथा के रूप में कही जाती है। यहाँ पर लेखक आज के आतंकवाद के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए उसे रोकनेवाले किसी अगस्ति मुनि की प्रतीक्षा करने की बात करता है।

'गोदावल' कुण्ड की निर्मिती की कथा इसी प्रकार कहीं जाती है। विंध्याचल की भुजा मानिनी सोननदी से रूठकर जंगल की ओर झुक गई, जिसके कारण गहरा कुण्ड हो गया जिसे 'गोदावल कुण्ड' कहते हैं। संत कबीर दास की अमर कण्टक यात्रा के समय उनके शिष्य धरमदास द्वारा की गई 'अगवानी' की यादगार में एक सन्त ने 'कबीर-चउरा' बनवाया था। जहाँ पर एक बार अचानक शिवजी के प्रकट होने के कारण गांव के कई भक्तों ने 'शंकर-पार्वती' का मंदिर बनवाने की कथा का वर्णन दिखाई देता है। जहाँ पर प्रत्येक वर्ष शंकर-पार्वती के ब्याह का उत्सव मनाया जाता है। अकाल पड़ने पर गांवो में लोककथाओं और मान्यता के आधार पर कि यदि मंदिरों में भजन कीर्तन किया जाय और शंकर की मूर्ति को पानी में डुबो दिया जाय तथा देवी के मंदिर में 'सहस्त्रनाम' का जाप किया जाय तब पानी बरसेगा। यहाँ स्पष्ट है गांव के लोग इन लोककथाओं का पालन करते हैं। हवन यज्ञ भी करते हैं। इस प्रकार उपन्यासकार ने अनेक लोककथाओं का स्पष्ट उल्लेख किया हैं।

'धरती धन न अपना' में उपन्यासकार ने व्यक्ति का नाम रखने के पीछे भी कुछ कहानी होती है, अर्थात कई नाम विशिष्ट कारणों से रखे जाते हैं उस पर सोचा हैं। 'हरामी' नाम रखना इसी बात का प्रमाण है। काली अपने घर के लिए सिरकियाँ बनवाने हेतु खुशिया के पास गया था। खुशिया ने अपने भतीजे हरामी को बुलाया। काली ने पूँछा, क्या कोई दूसरा नाम नहीं मिला जो इसका नाम हरामी रखा है। तब खुशिया बताता है कि इसका रंग गोरा होने के कारण इसका नाम हरामी रखा गया क्योंकि कहावत है कि - ''गोरा कमीन और काला ब्राह्मण दोनों हरामी होते हैं।''[38] अहिस्ता-अहिस्ता इसका यही नाम पड़ गया। मिस्त्री संतासिंह संतान न होने पर किसी दूसरे बच्चे को गोंद नहीं लेना चाहता क्योंकि 'पराये तेल से कुल का दीपक नहीं जल सकता' ऐसी कहावत प्रचलित थी अर्थात कहावत और लोककथा का संबंध होता ही है। ईसा मसीह की कथाएं भी प्रचलित हैं। पादरी अचिन्त्यराम और निक्कू के बीच में ईसा की कहानी चलती है। ईसामसीह सुख-शांति की तालीम देता है। अंजील पाक में लिखी लोककथा की तरफ ध्यान दिलाते हुए कहता है कि ''ऊँट का सुई के सुराख से गुजर हो सकता है लेकिन धनवान का स्वर्ग में गुजर मुमकिन नहीं।''[39] इस प्रकार स्पष्ट है कि उपन्यासकार ने अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए लोककथाओं का आधार लिया है।

मदन दीक्षित ने 'मोरी की ईंट' उपन्यास में लोककथाओं की ओर ध्यान दिया है। जिन उपन्यासों में धर्मांतर, मिशनरी आदि का चित्रण है। उसमें ईसा मसीह की कहानी होती है। अर्थात इन लोककथाओं में मनोरंजन के साथ जीवन का संदेश भी होता हैं। लोककथाएं पथदर्शक लगती हैं। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी में समन्वय होना चाहिए। उनमें वैचारिक संघर्ष न हो इसे स्पष्ट करते हुए सैमुअल मार्था से कहता है - ''पुराने लोग कहा करते थे कि जब पिता का जूता बेटे के पैर में आने लगे तो उसके साथ एक दोस्त की तरह वर्ताव करना चाहिए।'' जीवन के रंगमंच की नायक नयी पीढ़ी होती है। पुरानी पीढ़ी को अपनी सहायक भूमिका से ही संतुष्ट रहिना सीखना चाहिए यही संदेश दिया है।

'एकलव्य' में चंद्रमोहन प्रधानजी ने सभी महाभारत की घटना, वेदों, पुराणों की कथाओं का चित्रण करके आधुनिक काल की समस्याओं का चित्रण किया हैं।

यहाँ स्पष्ट है हिन्दी उपन्यासकारों ने समाज जीवन के सांस्कृतिक पक्ष का उद्घाटन करने के लिए तत्कालीन समाज में स्थित कथा, लोककथा, कहावतों पर आधारित कथा का आधार लिया है। आलोच्य उपन्यासों में पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक लोककथाएं रही हैं। सभी कथाएं रंजक होने के साथ-ही-साथ जीवन का संदेश देने में सफल रही हैं। विंध्य-अगस्त की कथा-नम्रता, ईसाई की कथा-सेवा, एकलव्य की कथा-कर्मनिष्ठा का संदेश देती है। लोककथा का आकार छोटा होने पर भी गुणात्मकता श्रेष्ठ होती है। कथानक के विचार से लोककथाएं सहायक होती हैं। अत: लोककथा सिर्फ कथा न होकर जीवन की कथा होती है।

लोकगीत :-

लोकगीत को 'फोक टॉल' कहा जाता है। लोगों में प्रचलित गीत, लोगों द्वारा गाये जाने वाले गीत को 'लोकगीत' कहा जाता है। लोककथा के समान ये भी अलिखित होते हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसकी पहुँच होती है। खुशियों के दर्शन इसमें होते हैं। लोककथा के साथ-साथ लोकगीत भी महत्वपूर्ण है। विवाह, संस्कार, उत्सव, पर्व के अवसरपर ऐसे गीत गाये जाते हैं। लोकभाषा में लिखे ये गीत लोगों की रागात्मक अनुभूति होती हैं। संगीत, लय और स्वर का मिलाप होता हैं। इसके रचइता अज्ञात होते हैं। लोककथा के समान लोकगीत भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं। आलोच्य उपन्यासों में इसप्रकार के गीत दिखाई देते हैं।

'खारे जल का गांव' में उपन्यासकार डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल ने विंध्याचल के अंचल में गाये जाने वाले गीतों का चित्रण किया हैं। उस अंचल में देवी-देवताओं की पूजा तथा उनके शादी ब्याह का पर्व मनाते समय ऐसे गीत गाये जाते हैं। शंकर-पार्वती के विवाह के समय देवगांव की औरतें यह गीत गाती हैं -

"पूरब दिशा ते उठी रे बदरिया, पश्चित दिशा का ही जाय ।
ननचू का बुंदिया छिमाबा मोरी मेघिया, सेंदुरा भरई मोरी मांग।"

अर्थात पूर्व दिशा से बादल उमड़-घुमड़कर पश्चिम दिशा की ओर जा रहे हैं। कन्या कहती है कि मेघिनी, इन मेघों को रोक, ये कुछ क्षण रूक जायं। जब मेरी मांग में सिंदूर भर जाय, तब इन्हें बरसने के लिए कहना। इसके पश्चात बेवहारी गांव की चमारिनें और खटकिन जाति की लड़कियाँ यह गीत गाती हैं।

"पूसा मैं परिखेऊँ, माघा मैं परिखेऊँ
परिखेऊँ मैं जेठ बइसाख;
अब कइसे के मेघा छिमाबऊँ, मोरी बहिनी,
कि घुमड़ि के लगिगे असाढ़।"[40]

इस गीत के बाद फगुआ का गीत ढ़ोलकी, टिमकी, खंझनी आदि के साथ गाया जाता है।

"धरती कै म्यान बनावा, बलमजी, बदरे का ओहार,
चंदाकै बेंदी बनावा, गउने हम जाब।"

ठाकुर करन सिंह बियारी के बारे में अपने गीतों में कहते हैं -

"सांझे करै बियारी, चैत करै खरिहान ।
न ओखा कही बिअरिहा, न ओखा कही किसान।"

बम्हनान और बनियान की औरतें चैती नहाने जाते समय गीत गाती हैं -

"बेला फुलै आधी रात,
चमेली भिनसारे हो, आली ....।"

गांव की कोलिन, चमारिने महुआ बिनते हुए गीत गाती हैं -

"खाले टोला महुआरी, मोरे टोला नीम,
तोरे बालम बगइया, पै दइदे अफीम ।"[41]

चसिया की शादी में तिलक चढ़ते समय टिहकी गांव की औरतें गीत गाती हैं -

"धरम मनावा नाती अपने मयरि केर,
जेहि कोख लिहेउ अउतार।

धरम मनवा पूत-अपने मयरि केर,

जेहि कोख दिहिस अउतार।''

चसिया की शादी के समय तेल चढ़ाते हुए औरतें गीत गाती हैं -

''दुबिया चुनि-चुनि दिहिस असीस रे,

बाढ़इ उन्हैं सिंह लाख बरीस रे।

अस रे बढ़ि हिं जस धरती केर धान रे,

ओइ सई उअइ जस सुरिज अऊ चांद रे।''[42]

बरात के आगमन पर 'दुआर चार' पर बनरा गीत गाया जाता है जो इस प्रकार का गीत गाया जाता है।

''अड़ि रहे पमन दुआर, सुघर बर अड़ि रहे,

हेरैं फूफू के भतार, सुघर बर अड़ि रहे।''

अरविन्द द्वारा अंजुरी भरने और लावा परोसने के समय इस प्रकार का गीत गाया जाता है ।

''लावा परोस भाई लावा, तोहरी बहिनी पियारी हइ हो,

पहिल पियारी तोर बहिनी, दुसरे पियारी सग बहनोइया हइ हो।''

लड़की चसियाकी शादी के बाद बिदाई के समय का गीत -

''ई सुवनन का अइसन पालेन, जइसे चना केर दार,

परई सुवनन मोर कान मानई , उड़ि जंगल का जाई।

ई ढेरिअन का अइसेन पालेन, कांचेन दूध पिआई,

पै ई ढेरिया मोर कान न मानई, चलि रे बिदेसई जाई।''

चनकी की शादी का गीत भी इसी प्रकार से गाया जाता है -

''पइयाँ मैं लागूँ, चंदा सुरिज तोरे, तिरिया जनम देइउ होना।

तिरियाजनम तो है गऊ के बराबर .... जित हाँकई तित जाइउ हो ना।''

इस प्रकार स्पष्ट कि सभी शुभ कार्यों को लोकगीतों द्वारा खुशी के साथ गीत गाकर करने की परंपरा रही है, ऐसा दिखाई देता है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में नंदसिंह ईसाई धर्म के परिवर्तन के समय पर गीत गाते हैं। इसे उत्सव के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर यह गीत गाते हैं।

"थी दुनिया तरीकी में डूबी हुई, खुदा की तरफ से फिर से रोशनी हुई,
ए गुहनगार इस रोशनी में आ, अब देखता हूँ, जो अन्धा मैं था।
तेरे गुनाह ओ दूर करेगा, कि दुनिया का नूर है यसूह।"

पादरी द्वारा इशारा करने पर लोग खड़े होकर गीत गाते हैं -

"ऐ खुदा तू दिन का नूर चमकाता है, और धूप का जोर बढ़ाता है।
झगड़ों की आग को बुझा, तमाम झगड़ों को मिटा,
जस्मानी सेहत दे और दिल में राहत पैदा कर।"

पादरी का भाषण खत्म होने पर पादरी निम्न गीत गाता है -

"अब रूख्सत करो खुदा बंद, कर सब कसूरों को माफ।
हम सबके सब गुनहगार, अब बन्दगी कर ले कबूल ॥
हम सब परअपनी रहमत बरसा, कर दिलों को कलाम से साफ ।
बस तेरा फजल है दरकार, और रूख्सत कर सलामती से॥"[43]

इस प्रकार जगदीश चंद्र जी ने धर्म परिवर्तन के समय लोकगीतों का चित्रण किया है जिसमें येशु से प्रार्थना की है।

'मोरी की ईंट', 'एकलव्य', 'आग-पानी आकाश' में भी किसी लोकगीत का चित्रण नहीं हुआ है, सिर्फ युगेश्वर और भागवत के स्कूल जाते समय गांव के बच्चे कुछ 'फकड़ा' गाते हैं उसका ही चित्रण उपन्यासकार ने किया है जो इस प्रकार -

"धोबिया बना साहेब, धोबिनिया बनी मेम,
गदहा भागा घाट से, खोजो दुनू टेम।"
'कटोरे पे कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा'

बच्चे स्कूल में गीत गाते हैं -

"ठीक-ठीक दुपहरिया, नाचै चौधरिया,
गुरूजी के आसन डोले, भूख मरे चटिया।

गुरूजी आये, छुट्टी पाये, हाथी छोड़, घोड़ा दौड़ायें,

घोड़ा पड़ गया रेत में, सारी बिद्दा कंठ में।''[44]

इस उपन्यास में शादी ब्याह, कोर्ट मैरिज के द्वारा किये जाने के कारण उनके गीतों का चित्रण नहीं मिलता है।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत तृतीय अध्याय 'हिंदी उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन' में 'खारे जल का गांव', 'धरती धन न अपना', 'मोरी की ईंट', 'एकलव्य', 'आग-पानी आकाश' आदि आलोच्य उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन का लेखा-जोखा दे दिया है। दलित जीवन के अंतर्गत उनमें स्थित अंधविश्वास, उनके तीज-त्यौहार, पर्व, उनकी रूढ़ि-परंपरा-प्रथा, उनके विवाह संस्कार और मृतक संस्कार, उनकी देवी-देवता संबंधी मान्यता, उनमें स्थित बलिप्रथा, उनकी आर्थिक स्थिति और रहन-सहन, आवास-व्यवस्था, उनकी शिक्षा संबंधी धारणा, जातीय भेदाभेद, जातीय पंचायत, संगठन और समूह भावना, राजनीतिक स्थिति, लोककथा-लोकगीत आदि विविध अंगों का विस्तृत विचार किया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में अछूतों की व्यथा का चित्रण करने का महत्वपूर्ण। कार्य किया है। बदलते, परिवर्तित समाज जीवन, सामाजिक मान्यता, समाज व्यवस्था का यथार्थ चित्रण करने में उपन्यासकार सफल रहे हैं। आलोच्य उपन्यास इसके प्रमाण हैं।

आलोच्य उपन्यासों में 'खारे जल का गांव' 1972 की रचना तो 'आग-पानी आकाश' 1999 की रचना है। इन दो उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन में जो अंतर है, उसका कारण उस काल में परिवर्तित दलित समाज ही है। प्रारंभ में अंधविश्वास का शिकार दलित समाज आज धीरे-धीरे शिक्षित होने के कारण अंधविश्वास से दूर जाकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना रहा है। इसके दर्शन यहाँ होते हैं। उसे संगठन शक्ति का ज्ञान हो रहा है। आम्बेडकर जी के विचारों से प्रभावित यह समाज आज अपनी अलग पहचान बनाने में सफल रहा है ऐसा लगता है।

अंधविश्वास के मूल में अज्ञान, धार्मिक भय रहा है। श्रद्धा,पूजा, देवी-देवता संबंधी भाव के दर्शन इसमें होते हैं। अकाल, बाढ़, आपदा, बीमारी के संदर्भ में भी अंधविश्वास दिखाई देते हैं। दवा की अपेक्षा दुवा की प्राप्ति के कारण बलि देना, मिन्नतें मांगना, ओझा की सहायता लेना आदि आयाम दिखाई देते हैं। अंधविश्वास के कारण पंडित, ब्राह्मण, मौलवी, ओझा, पादरी, फकीर उनका शोषण करते हैं। भूत, प्रेत, चुडैल, डायन, मृतात्मा, मंत्र-तंत्र, जादू टोना, शकुन-अपशकुन, शुभ-अशुभ, सबंधी अनेक अंधविश्वास दिखाई देते हैं। पढ़े-लिखे या अनपढ़, नागरी या देहाती सभी इसके शिकार हैं। आज उनमें शिक्षा का प्रसार हो रहा है। परिणामत: अंधविश्वास का प्रभाव कम हो रहा है। काली, सुग्रीव, अरविन्द आदि जैसे पात्र इसके विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं। साहित्यकारों ने अंधविश्वासों का चित्रण करने के साथ-ही-साथ उनमें निर्माण होने वाली चेतना को दर्शाया हैं, इसी कारण लगता है भविष्य में अंधविश्वास की मात्रा कम होगी।

दलित समाज जीवन का उत्सव-पर्व, तीज-त्यौहार, एक सांस्कृतिक अंग रहा है। अपने दु:ख, पीड़ा, गम भूलने के लिए धूमधाम से पर्व मनाते हैं। देवी-देवता, धर्म, रूढ़ि, परंपरा के कारण पर्व मनाते हैं जिस समाज व्यवस्था का एक अंग दलित है। अत: उनके उत्सव भी हिन्दुओं के समान है। परंतु आज इसाईयों धर्मांतरण के कारण ईसाई बने दलित अपने उत्सव-पर्व अलग ढंग से मनाते हैं। जिसका ईसा-मसीह से संबंध रहा है। उत्सव पर्व में सामूहिकता, सामाजिकता, एकता दिखाई देती है। सभी धर्म, जाति के लोग इसमें शामिल होते हैं। 'खारे जल का गांव' का 'गोदावल मेला' एक आदर्श मेला पर्व लगता है। ऐसे उत्सवों की आज आवश्यकता है जिसके कारण धार्मिक एवं सामजिक एकता बनी रहें।

भारतीय समाज रूढ़ि प्रिय होने के कारण दलित समाज में भी इसके दर्शन होते हैं। रूढ़ियों का निर्वाह करने की उनकी प्रवृत्ति यहाँ दिखाई देती है। धार्मिक, सामाजिक संस्कारों में रूढ़ियों का पालन किया जाता है। बलिप्रथा, मिलौनी रस्म शोषण का आयाम लगती है तो 'कराव' प्रथा एक अनोखी प्रथा है। जो पुनर्विवाह को प्रोत्साहन देती हैं। अर्थात प्रथा के दोनों रूप यहाँ हैं। समाज के लिए हितकारी प्रथाओं की आवश्यकता है। यहाँ प्रगतिवादी विचारों के वाहक पात्र, हिंसक, अमानवीय प्रथाओं का विरोध करते हैं। वे सभी उपन्यासकार के विचारों के वाहक ही हैं। 'एकलव्य' की कथा महाभारत की होने के कारण शिक्षा संबंधी रूढ़ि-परंपरा का चित्रण किया है। जाति व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था का रूढ़िगत, परंपरागत चित्रण करके सही शोषण का प्रतीक है। इसे स्पष्ट किया है। अत: स्पष्ट है दसवें दशक के उपन्यासों में इसका अधिक चित्रण नहीं हैं।

विवाह संस्कार और मृतक संस्कारों का चित्रण किया है जिसमें परंपरा का पालन किया गया है। विवाह में दहेज देना, जूठन खिलाना, मिलौनी रस्म, कराव प्रथा का पालन होता है। 'कराव' एक आदर्श प्रथा लगती है। तो 'आग-पानी आकाश' में धनवान लोग धन के बल पर झुनकी को खरीदकर विवाह रचाते हैं। इस घिनौनी पद्धति पर प्रहार किया है। मृतक संस्कार परंपरागत है। मृत आत्मा को संतुष्ट कराने की उनकी प्रवृत्ति है।

दलित समाज अंधश्रद्धा, धार्मिक होने के कारण देवी-देवता की पूजा-उपासना करता है। देवी-देवता के नाम पर उत्सव, पर्व मनाते हैं। मेले का आयोजन करते हैं। धार्मिक व्यक्ति को महत्व देकर दान देने की उनकी प्रवृत्ति यहाँ दिखाई देती है। ईसाई बने दलित ईसामसीह की उपासना करते हैं। देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए बलिप्रथा का आधार लिया जाता है।

दलित समाज परंपरागत ढंग से जीवन जी रहा है। गरीबी, अर्थाभाव, भूख, अशिक्षा, अंधविश्वास, भौतिक सुविधा का अभाव उनके जीवन का एक अंग ही है। आलोच्य उपन्यासों में ऐसा ही दलित जीवन चित्रित है। झुग्गी झोपड़ी, फटे कपड़े, चारों ओर बदबू, नंगे बच्चे, ऐसे परिवेश का चित्रण है। आज इसमें भी परिवर्तन

हो रहा है । 'धरती धन न अपना' का काली अपना मकान बनाता है तो 'आग-पानी आकाश' का युगेश्वर और भागवत शिक्षित होकर सरकारी नौकरी प्राप्त कर सुख चैन से जीते हैं। यहाँ स्पष्ट है आज के परिवर्तित शिक्षित दलितों का भी जीवन परिवर्तित हो रहा है। वे सवर्णों के समान प्रगत जीवन जीते हैं ऐसा लगता है।

परंपरागत, अप्रगत व्यवसाय करने वाला दलित आज सरकारी सुविधाओं से लाभान्वित होकर नये व्यवसाय कर रहा है। सरकारी नौकरी प्राप्त कर रहा है। आलोच्य उपन्यासों में इसके दर्शन होते हैं। उनकी रहन-सहन, खान-पान, आवास, वेशभूषा में परिवर्तन हो रहा है। बदलती सामाजिक व्यवस्था का उपन्यासकारों ने सही चित्रण किया है।

जातिव्यवस्था, छुआछूत की भावना सामाजिक मान्यता के कारण दलित समाज प्राचीन काल से शिक्षा से दूर रहा है। अशिक्षा, अज्ञान के शिकार दलित समाज अज्ञानी होने के कारण शोषित है। उनके शोषण का मूल कारण अज्ञान है। पाठशाला में प्रवेश न होना, पाठशाला में पीछे बिठाना, उनके छूने से अपवित्र होना, सवर्णों द्वारा अपमानित करना, हीन कर्म करने के लिए मजबूर करना, आदि के कारण यह समाज अशिक्षित रहा है। आलोच्य उपन्यासों में इसके दर्शन होते हैं। परंतु आज आरक्षण, सरकारी विकास योजना, सामाजिक संस्था, सेवाभावी व्यक्ति के कार्य के परिणाम स्वरूप दलित जाग उठा है। शिक्षित बन रहा है। महात्मा फुले, शाहू, आम्बेडकर जैसे नेताओं के कारण यह संभव हुआ है। 'एकलव्य' का एकलव्य स्वयं अध्ययन करता है तो 'आग-पानी आकाश' का युगेश्वर, भागवत, रामसजीवन, आलोककुमार, उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। यहाँ स्पष्ट है आज दलित युवा शिक्षा का महत्व समझ चुका है। वह साक्षर बन रहा है। इसके दर्शन उपन्यासों में होते हैं।

जातीय भेदाभेद, भारतीय समाज व्यवस्था के लिए एक धब्बा है। दलित इससे पीड़ित है। सवर्ण-अवर्ण, उच्चवर्ग-निम्न वर्ग के कारण यह भेदाभेद बढ़ रहा है। दलितों में जातीय भेदाभेद रहा है। महार-चमार से, मेहतर-महार से, भेद रखते हैं। ग्राम-व्यवस्था, शिक्षालय, छात्रावास, मंदिर, पनघट में इसके दर्शन होते हैं। इससे प्रभावित दलित धर्मांतर करके ईसाई बन रहा है। आलोच्य उपन्यासकारों ने इस पर प्रकाश डाला है। जातीय पंचायत उनकी अनोखी व्यवस्था है। जातीय समस्या पर निर्णय देने वाली वह एक संस्था है जिसके निर्णय का सम्मान सभी करते हैं। परंतु आज का पढ़ा-लिखा युवक इसके खिलाफ विद्रोह करता हैं। काली, अरविन्द, सुग्रीव इसी प्रकारके पात्र हैं।

आम्बेडकरजी के 'संगठित बनो-संघर्ष करो' नारे से प्रभावित दलित संगठित हो रहा है। अन्याय, भ्रष्टाचार, शोषण के खिलाफ संगठित होकर अपने हक्क की रक्षा कर रहा है। यही चेतना सामाजिक परिवर्तन में यथार्थ लगती है। आलोच्य उपन्यासों में इसके दर्शन होते हैं। 'क्रांति युवा मोर्चा', 'मेहतर संघ' की स्थापना

आदि इसके प्रमाण हैं। इसके बल पर राजनीतिक मुनाफे, आरक्षण का लाभ प्राप्त किया है। परंतु दलितों में से सक्षम नि:स्वार्थी नेतृत्व का अभाव लगता है। राजनीतिक लाभ, सत्ता प्राप्ति के लिए जाति का आधार लिया जाय तो यह एक शोषण का ही आयाम बनेगी। दलित नेता इस पर सोंचे, ऐसी साहित्यकारों की अपेक्षा है।

लोककथा-लोकगीत, कहावत का आधार लेकर कथानक का विस्तार किया है। लोकगीत, लोककथा,कहावत दलितों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं। यहाँ स्पष्ट है आलोच्य उपन्यास दलित जीवन की तस्वीर है। दलितों के जीवन के सभी आयामों का यथार्थ चित्रण हुआ है ऐसा लगता है।

संदर्भ सूची :-

1) डॉ. पांडुरंग पाटील, ''देवेश ठाकुर और उनका साहित्य'', 1998, क्वालिटी बुक्स पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स; कानपुर, पृ.69

2) डॉ. वीरेंन्द्र सिंह, ''शब्दार्थों के गवाक्ष'', 1986, विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, पृ.139

3) डॉ.भगवती प्रसाद शुक्ल, ''खारे जल का गांव', 1972, स्मृतिप्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.112

4) जगदीशचंद्र, ''धरती धन न अपना'',द्वि.सं.1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.44

5) मदन दीक्षित, ''मोरी की ईंट'', प्र.सं.1996, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.55

6) वही, पृ.42

7) चंद्रमोहन प्रधान, ''एकलव्य'', 1997, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.123

8) डॉ. रामनाथ शर्मा, ''भारत में ग्रामीण समाज शास्त्र'', 1997, राजहंस प्रकाशन, मेटल, पृ.285-287 तक।

9) वृंदावनलाल वर्मा, ''मृगनयनी', 1950, मयूर प्रकाशन, झांसी, पृ.200

10) जगदीश चंद्र, ''धरती धन न अपना'', द्वि.सं.1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.81

11) मदन दीक्षित, ''मोरी की ईंट'', प्र.सं.1996, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.116

12) रामधारी सिंह दिवाकर, ''आग-पानी आकाश'', प्र.सं.1999, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,नयी दिल्ली, पृ.2

13) संपादक - श्यामसुंदर दास, ''हिन्दी शब्द सागर'', नववां भाग, पृ.4536

14) यज्ञ दत्त शर्मा, ''प्रबंध सागर'', 1989, अक्षर प्रकाशन, सोनीपत, पृ.153

15) मदन दीक्षित, ''मोरी की ईंट'', प्र.सं.1996, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.114-116

16) डॉ.भगवती प्रसाद शुक्ल, ''खारे जल का गांव', 1972, स्मृतिप्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.117

17) वही, पृ.74-75

18) वही, पृ. 105

19) मदन दीक्षित, ''मोरी की ईंट'', प्र.सं.1996, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.148

20) जगदीश चंद्र, ''धरती धन न अपना'', द्वि.सं.1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.59

21) वही, पृ.95

22) वही, पृ.140-141

23) वही, पृ.165

24) वही, पृ.200

25) मदन दीक्षित, ''मोरी की ईंट'', प्र.सं.1996, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.48

26) चंद्रमोहन प्रधान, ''एकलव्य'', प्र.सं.1997, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.122

27) रामधारी सिंह दिवाकर, ''आग-पानी आकाश'', प्र.सं.1999, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,नयी दिल्ली, पृ.29

28) डॉ.भगवती प्रसाद शुक्ल, ''खारे जल का गांव', 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.43-44

29) वही, पृ. 78

30) जगदीश चंद्र, ''धरती धन न अपना'', द्वि.सं.1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.81

31) मदन दीक्षित, ''मोरी की ईंट'', प्र.सं.1996, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.22

32) डॉ.भगवती प्रसाद शुक्ल, ''खारे जल का गांव', 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.85

33) डॉ. सुमित्रा त्यागी, ''हिन्दी उपन्यास : आधुनिक विचारधाराएं'', 1978, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ.163

34) डॉ.भगवती प्रसाद शुक्ल, ''खारे जल का गांव', 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.90

35) मदन दीक्षित, ''मोरी की ईंट'', प्र.सं.1996, शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.218

36) रामधारी सिंह दिवाकर, ''आग-पानी आकाश'', प्र.सं.1999, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,नयी दिल्ली, पृ.138

37) डॉ. इन्द्रपाल सिंह, ''साहित्यिक निबंध : एक नवीन दृष्टि'',प्र.सं.1981, अतुल प्रकाशन, कानपुर, पृ.17

38) जगदीश चंद्र, ''धरती धन न अपना'', द्वि.सं.1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.109

39) वही, पृ.109

40) डॉ.भगवती प्रसाद शुक्ल, ''खारे जल का गांव', 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.11

41) वही, पृ.49

42) वही, पृ.62

43) जगदीश चंद्र, ''धरती धन न अपना'', द्वि.सं.1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.160

44) रामधारी सिंह दिवाकर, ''आग-पानी आकाश'', प्र.सं.1999, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस,नयी दिल्ली, पृ.4